Ishwar Geeta

।।ईश्वर–गीता।।

SHRI RAJ VERMA JI

Contact- +91-9897507933, +91-7500292413(WhatsApp No.)

Email- mahakalshakti@gmail.com

For more info visit---

www.scribd.com/mahakalshakti

www.gurudevrajverma.com

प्रस्तुत ईश्वर-गीता, जिसमें छः हजार श्लोकों का हिन्दी में अनुवाद है, कूर्मपुराण में उल्लेखित है। ईश्वर-गीता में ग्यारह महत्वपूर्ण अध्याय हैं। जिसमें मनुष्य के धर्म, कर्त्तव्यों, ईश्वर के स्वरूप तथा ईश्वर के प्रति भक्ति, योग एवं साधनादि का सुन्दर एवं सरल वर्णन किया गया है। निश्चय ही यह गीता साधकों, ग्रहस्थों व योगियों सहित समस्त मानव जाति के लिये कल्याणकारी है। ईश्वर-गीता स्वयं महादेव द्वारा कही गयी है, जिसका नित्य भक्तिपूर्वक पाठ करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है एवं अन्त समय परमगति को प्राप्त करता है।

(ओं नमो भगवते शिवाय)

।।पहला-अध्याय।।

{ईश्वर (शिव) तथा ऋषियों के संवाद में ईश्वर-गीता का उपक्रम}

ऋषियों ने कहा- सूतजी ! आपने स्वायम्भुव मन्वन्तर की सृष्टि तदुपरान्त इस ब्रह्माण्ड का विस्तार और (अन्य विभिन्न) मन्वन्तरों के विषय में भली भांति बतलाया तथा उन (मन्वन्तरों) में धर्मपरायण ज्ञानयोगी वर्ण धर्म के अनुयायियों के नित्य आराध्य ईश्वरों के ईश्वर देव का भी वर्णन आपने किया। इसी के साथ ही आपने सम्पूर्ण संसार के दुःखों को नष्ट करने वाले एक मात्र ब्रह्मविषयक उस उत्तम ज्ञान का भी वर्णन किया, जिसके द्वारा हम उस परम तत्त्व को देख सकते हैं। प्रभो !

आपने साक्षात् नारायण कृष्ण-द्वैपायन (व्यासजी) से तत्त्वज्ञान प्राप्त किया है, इसलिये हम आपसे पुनः पूछते हैं। मुनियों के उस वाक्य को सुनकर पौराणिक सूतजी ने प्रभु कृष्ण-द्वैपायन का स्मरण कर कहना प्रारम्भ किया। इसी बीच कृष्ण-द्वैपायन व्यास स्वयं वहां पहुंच गये, जहां श्रेष्ठ मुनिजन यज्ञ कर रहे थे। कृष्ण मेघ के समान द्युतिवाले तथा कमलपत्र के समान नेत्रवाले उन वेद के विद्वान व्यासजी को देखकर श्रेष्ठ द्विजों ने उन्हें प्रणाम किया।

- रोमहर्षण सूतजी ने भी उन्हें देखकर भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया और गुरु की प्रदक्षिणा कर हाथ जोड़ते हुए उनके पार्श्वभाग में खड़े हो गये। महामुनि (व्यास) के द्वारा आरोग्य के विषय में प्रश्न पूछे जाने पर उसका यथोचित उत्तर देकर शौनक आदि महामुनियों ने व्यासजी को आश्वस्त किया तथा उनके योग्य आसन उन्हें प्रदान किया।
- तदनन्तर पराशरजी के पुत्र प्रभु व्यासजी ने उनसे पूछा- क्या आप लोगों के तप, स्वाध्याय तथा श्रवण किये गये वेदादि की हानि तो नहीं हो रहीं है ? तब उन सूत ने अपने गुरु महामुनि व्यास को प्रणाम कर कहा- आप ब्रह्मविषयक ज्ञान मुनियों को बतलायें। ये मुनि शान्त, तपस्वी तथा धर्मपरायण हैं। इन्हें सुनने की इच्छा है, आप कृप्या यर्थाथरुप से ब्रह्मविषयक सर्वोच्च ज्ञान का उपदेश करें। मोक्ष प्रदान करने वाले जिस दिव्य ज्ञान को आपने मुझे तथा पूर्वकाल में कूर्मरूप धारणकर विष्णु ने मुनियों को बतलाया था, इस समय आप उसी ज्ञान का उपदेश दें। सूत के वचन सुनकर सत्यवती के पुत्र मुनि व्यास ने रुद्र को मस्तक द्वारा प्रणामकर सुखदायक वचन कहा।

व्यासजी बोले- प्राचीनकाल में सनत्कुमार आदि प्रमुख योगीश्वरों द्वारा पूछने पर स्वयं प्रभु महादेव ने जो कहा था, उसी को मैं कहता हूं।

सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, अंगिरा, रुद्रसहित परम धर्मज्ञ भृगु, कणाद, कपिल, योगी महामुनि वामदेव, शुक्र तथा भगवान् वसिष्ठ- इन सभी संयमित चित्तवाले मुनियों ने संशयान्वित होने पर परस्पर परामर्श करके पवित्र बदरिकाश्रम में, घोर तप किया। तब उन लोगों ने आदि और अन्त से रहित धर्मपुत्र महायोगी पवित्र नारायण नामक ऋषि का नर के साथ दर्शन किया। उन भक्ति सम्पन्न योगियों ने वेदों में वर्णित विविध स्तोत्रों द्वारा स्तुति करके उन श्रेष्ठ योगी को प्रणाम किया। सर्वज्ञ भगवान् नारायण ने उनकें अभीष्ट को जानकर पुनः गम्भीर वाणी में उनसे पूछा कि आप लोग किस प्रयोजन से तपस्या कर रहे हैं?

- प्रसन्न मनवाले ऋषियों ने जिनका शुभ आगमन अभीष्ट-सिद्धि की निश्चित सूचना देता है ऐसे उन विश्वात्मा, सनातन साक्षात् नारायण देव से कहा- भगवन् ! हम सभी ब्रह्मवादी संशय में पड़ गये हैं। आप पुरुषोत्तम हैं, हम एक मात्र आपकी शरण में आये हैं। आप उस परम तत्त्व को जानने वाले हैं, सर्वज्ञ, भगवान्, ऋषि तथा स्वयं साक्षात् नारायण अव्यक्त पुराणपुरुष हैं। परमेश्वर ! आपको छोड़कर अन्य कोई दूसरा जानने वाला नहीं है, हमें सुनने की इच्छा है, आप सम्पूर्ण संशय को दूर करने में समर्थ हैं। इस सम्पूर्ण कार्यरुप जगत् का कारण क्या है ? कौन नित्य गतिशील रहता है ? आत्मा कौन है ? मुक्ति क्या है और संसार की रचना का क्या प्रयोजन है। इस संसार का चलाने वाला शासक कौन हैं ? अथवा सबका द्रष्टा कौन है ? परात्पर ब्रह्म क्या है ? यह सब आप हमें बतालायें।
- ऐसा कहे जाने पर मुनियों ने तपस्वी-रूप का परित्याग किये हुए, अपने तेज द्वारा प्रतिष्ठित, प्रकाशमण्डल से मण्डित, वक्षःस्थल में श्रीवत्स धारण किये हुए, तप्त स्वर्ण के समान आभा वाले और हाथों में शंख, चक्र,

गदा तथा शार्ङ्ग नाम का धनुष धारण किये हुए लक्ष्मी सहित विमल एवं द्युतिमान् पुरुषोत्तम देव का दर्शन किया। उस समय उन्हीं के तेज के कारण नर (ऋषि) नहीं दिखलायी पड़े।

- उसी समय चन्द्रमा से अंकित मस्तक वाले महादेव महेश्वर रुद्र प्रसन्नता पूर्वक प्रकट हुए। चंद्रभूषण जगन्नाथ त्रिलोचन का दर्शनकर प्रसन्न मनवाले वे सभी (मुनि) भक्तिपूर्वक उन परमेश्वर की स्तुति करने लगे- ईश्वर की जय हो। भूपति महादेव शिव की जय हो। सभी मुनियों के स्वामी तथा तपस्या द्वारा भलीभांति प्रपूजित होने वाले आपकी जय हो। सहस्त्रमूर्ति ! विश्वात्मन् ! संसाररूपी यंत्र के प्रवर्तक और संसार के जन्म, रक्षा और संहार के कारण हे अनन्त ! आपकी जय हो। हजारों चरण वाले, ईशान, शम्भु, योगिन्द्रों द्वारा वन्दित अम्बिकापति ! आपकी जय हो। परमेश्वरदेव ! आपको नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भक्तवत्सल भगवान् त्र्यम्बक ईश ने हृषीकेश का आंलिगन कर गम्भीर वाणी में कहा- हे अच्युत ! पुण्डरीकाक्ष ! ये ब्रह्मवादी मुनीन्द्र किस कारण से इस स्थान पर आये हैं अथवा मुझे क्या करना है ? भगवान् के वाक्य को सुनकर देवाधिदेव जर्नादन देव ने कृपा करने के लिये उद्यत सामने स्थित महादेव से कहा-देव ! ये सभी मुनिगुण तपस्वी और निष्पाप हैं, ये लोग भली-भांति तत्त्वदर्शन की इच्छा से मेरी शरण में आये हैं। हे भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे समीप इन भावनामय मुनियों को वह दिव्य ज्ञान प्रदान करें।
- शिव ! केवल आप ही अपने आप को जानते हैं, दूसरा कोई आपको जानने वाला नहीं है। अतः आप स्वयं इन मुनिन्द्रों को अपना स्वरुप दिखलायें। ऐसा कहकर हृषीकेश ने योगसिद्धियों को दिखाते हुए वृषभध्वज

की ओर देखकर श्रेष्ठ मुनियों से कहा- हे मुनिगणो ! त्रिशूल धारण करने वाले शंकर महेश के दर्शन से आप लोग अपने आपको कृताथ समझें। आप लोग यथार्थरुप से ज्ञान प्राप्त करने योग्य हैं, सामने प्रत्यक्ष स्थित विश्वेश से उस तत्त्व-ज्ञान के विषयमें पूछें। मेरी संनिधि में ये यथार्थरूप से वर्णन करने में समर्थ हैं। विष्णु का यह वचन सुनकर तथा वृषभध्वज को प्रणामकर सनत्कुमार आदि ऋषियों ने महेश्वर से पूछा।

- इसी बीच आकाश से ईश्वर के योग्य एक अचिन्त्य दिव्य निर्मल आसन प्रकट हुआ। विश्वकर्ता वे योगात्मा महेश्वर विष्णु सहित उस आसन पर बैठ गये। अपने तेज से विश्व को पूरित करते हुए महेश्वर देव वहां सुशोभित हो रहे थे। उन ब्रह्मवादियों ने उन प्रकाशमान देवाधिदेव शंकर का उस निर्मल आसन पर सुशोभित होते हुए दर्शन किया। योग में स्थित लोग अपनी आत्मा में जिन आत्मस्वरूप ईश्वर का दर्शन करते हैं, उन्हीं अनन्य तेजस्वी शान्तस्वरूप शिव को उन ब्रह्मवादियों ने देखा, जिनसे समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है और जिनमें यह सब विलीन हो जाता है, उन प्राणियों के ईश को ब्रह्मवादियों ने आसन पर विराजमान देखा। जिनके भीतर यह सम्पूर्ण संसार है और यह जगत् जिनसे अभिन्न है, उन परमेश्वर को वासुदेव के साथ आसन पर विराजमान को देखा।
- मुनियों के पूछने पर परमेश्वर भगवान् पुण्डरीकाक्ष विष्णु की ओर देखकर अपने श्रेष्ठ योग का वर्णन करने लगे। शान्त मनवाले अनघ मुनियो ! आप सभी लोग सुनें- मैं ईश्वर द्वारा कहे गये ज्ञान का वर्णन यथोचितरूप से कर रहा हूं।

।।दूसरा-अध्याय।।

{आत्मतत्त्व के स्वरूप का निरूपण, सांख्य एवं योग के ज्ञान का अभेद, आत्मसाक्षात्कार के साधनों का वर्णन}

ईश्वरने कहा- द्विजो ! देवता लोग प्रयत्न करने पर भी जिसे नहीं जान पाते हैं, मेरा यह विज्ञान अत्यन्त गुह्य है, सनातन है एवं बतलाने योग्य भी नहीं है। इस ज्ञान का आश्रय ग्रहण कर श्रेष्ठ द्विजगणों ने ब्रह्मभाव को प्राप्त किया है। इस ज्ञान के कारण पूर्वकाल में भी ब्रह्मवादियों को पुनः संसार में आना नहीं पड़ा। अर्थात् इस ज्ञान से ब्रह्मभाव अवश्य प्राप्त होता है और ब्रह्मभाव प्राप्त करने के अनन्तर पुनः संसार में आगमन नहीं होता। यह ज्ञान गुह्य से भी गुह्यतम है, इस साक्षात् ज्ञान को प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये। आप भक्तिसम्पन्न ब्रह्मवादियों को आज मैं यह ज्ञान बतालांऊगा।

- जो आत्मा अद्वितीय, स्वस्थ, शान्त, सूक्ष्म, सनातन, सभी का अन्तरतम साक्षात् चिन्मात्र और तमोगणो से परे है, वही आत्मा अन्तर्यामी है, पुरुष है, वही प्राण है, वही महेश्वर है, वही काल तथा अग्नि है और वही अव्यक्त है-ऐसा श्रुतिका कथन है। इसी से संसार उत्पन्न होता है और इसी में विलीन हो जाता है। वह माया का नियामक माया से आबद्ध होकर अपनी इच्छा से माया को अङ्गीकार कर विविध शरीरों को उत्पन्न करता है। यह प्रभु आत्मा न तो गतिशील है और न गतिप्रेरक है। न यह पृथ्वी है, न जल है, न तेज है, न वायु है और न आकाश ही है। यह न प्राण है, न मन है, न अव्यक्त है, न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप है, न रस और न गन्ध ही है। न अभिमानी है, न वाणी ही है। द्विजोत्तमो ! यह न हाथ, न पैर, न पायु (शौचेन्द्रिय) और न उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय), न कर्ता, न भोक्ता तथा प्रकृति-पुरुष भी नहीं है। माया भी नहीं है, प्राण भी नहीं है, अपितु परमार्थतः चैतन्य-मात्र है।

- जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, उसी प्रकार सांसारिक प्रपञ्च और परमात्मा का भी कोई ऐक्य (अभेद्य आदि) सम्बन्ध नहीं हो सकता। जिस प्रकार संसार में धूप और छाया एक-दूसरे से विलक्षण हैं, वैसे ही पुरुष तथा प्रपञ्च भी तत्त्वतः एक-दूसरे से भिन्न हैं। यदि आत्मा स्वभाव से मलिन, अस्वस्थ तथा विकारयुक्त होता तो उसकी मुक्ति सैकड़ों जन्मों में भी नहीं होती। योगयुक्त मुनिजन परमार्थतः अपने विकार रहित, दुःख-शून्य, आनन्द-स्वरूप, अव्यय आत्मा का दर्शन करते हैं।
- मैं कर्ता हूं, सुखी, दुःखी, कृश एवं स्थूल हूं- इस प्रकार की जो बुद्धि है, वह मनुष्यों के द्वारा अंहकार के कारण ही अपनी आत्मा में आरोपित है। वेद के विद्वान् लोग आत्मा को साक्षी, प्रकृति से परे, भोक्ता, अक्षर, शुद्ध तथा सर्वत्र सम रूप से व्याप्त बतलाते हैं। अतएव यह संसार सभी प्राणियों के अज्ञान के कारण ही है। अज्ञान से विपरित ज्ञान होता है अर्थात् अज्ञान का नाश ज्ञान से ही होता है और यह प्रकृति संगत प्राणियों के मूल स्वभाव के सर्वथा अनुकूल शाश्वत शान्तिरूप होता है। अंहकार से उत्पन्न अविवेक के कारण स्वयं ज्योतिरूप, नित्य प्रकाश-युक्त सर्वव्यापी परम पुरुष अपने को 'मैं कर्ता हूं।' ऐसा मानता है। ब्रह्मवादी ऋषिगण प्रधान, प्रकृति और कारण को समझकर सत् एवं असत्-स्वरूप, अव्यक्त नित्य तत्त्व का साक्षात्कार करते हैं। कूटस्थ एवं निरञ्जन होते हुए भी यह आत्मा उस प्रधान, प्रकृति आदि से संगत होकर स्वात्मस्वरूप अक्षर ब्रह्म का यर्थाथरूप से ज्ञान नहीं कर पाता।
- अनात्मतत्त्व में आत्मविषयक विज्ञान से ही दुःख होता है तथा इसी प्रकार की भ्रान्ति के कारण ही राग, द्वेष, आदि सभी दोष उत्पन्न होते हैं।

इसके भ्रान्त पुरुष के कर्म में ही दोष होता है, इसी कारण पाप-पुण्य की स्थिति बनती है और उन कर्मों के अनुसार ही सभी प्रकार के देह की उत्पत्ति होती है। यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, कूटस्थ और दोषों से रहित है। यह अद्वितीय आत्मा मायारूप शक्ति के कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है, स्वभावतः इसमें भेद नहीं है। इसी कारण मुनिजन आत्मा को परमार्थतः अद्वैत ही कहते हैं। व्यक्त (महत्त्व, अहंतत्त्व आदि) के स्वभाव से जो भेद दिखलायी पड़ता है और यह भेद मूलतः माया (प्रकृति) के कारण ही है तथा यह आत्मा (पुरुष) के आश्रित होकर ही सब कुछ करती है। जैसे धुंए के सम्पर्क से आकाश मैला नहीं होता, वैसे ही अन्तःकरण से उत्पन्न होने वाले भावों से आत्मा लिप्त नहीं होती। जैसे अद्वितीय शुद्ध स्फटिक अपनी आभा से प्रकाशित होता है, वैसे ही उपाधियों से रहित निर्मल आत्मा अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होती है। विद्वान लोग इस संसार को ज्ञानस्वरूप ही कहते हैं, परन्तु दूसरे कुत्सित दृष्टि रखने वाले अज्ञानी लोग इसे अर्थस्वरूप (विषयस्वरूप) मानते हैं।

- भ्रान्त दृष्टि वाले पुरुषों के द्वारा स्वभातः कूटस्थ, निर्गुण, सर्वव्यापी और चैतन्य आत्मा अर्थरूप से ही देखा जाता है। जिस प्रकार स्फटिक गुञ्जा आदि उपाधि के कारण लोगों को लाल वर्ण सा दिखलायी पड़ता है, वैसे ही परम पुरुष भी माया के द्वारा नाम रूपात्मक उपाधियुक्त प्रतीत होने के कारण अनेक रूपों में दिखलायी पड़ता है। इस कारण मोक्ष के अभिलाषियों को अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वव्यापी तथा अव्यय उस आत्मा का श्रवण, मनन तथा उपासना करनी चाहिये। जिससे माया (अज्ञान) की निवृत्ति हो तथा शुद्ध आत्म-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो। योगी के मन में जब सर्वत्र व्याप्त रहने वाला चैतन्य सदा प्रकाशित होता है, तब वह योगी बिना किसी व्यवधान के आत्मभाव प्राप्त कर लेता है।

- योगी जब सभी प्राणियों को अपनी आत्मा में अच्छी प्रकार स्थित देख लेता है और सभी प्राणियों में अपने को स्थित देखता है, तब उसे ब्रह्मभाव की प्राप्ति हो जाती है। जब योगी समाधि की अवस्था में किसी भी प्राणी को अपने से भिन्न नहीं देखता। अर्थात् समस्त प्रपञ्च में आत्मदर्शन करता है, तब वह उस परतत्त्व से एकात्मभाव प्राप्त कर लेता है और अद्वितीय हो जाता है। उसके हृदय में स्थित सभी कामनाएं जब समाप्त हो जाती हैं तब वह पण्डित अमृतस्वरूप होकर परम कल्याण प्राप्त कर लेता है। योगी जब प्राणियों के पार्थक्य को एक तत्त्व में स्थित देखता है और उसी तत्त्व से उनका विस्तार होना समझता है, तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। जब वह परमार्थतः सर्वत्र केवल अद्वितीय आत्मा को ही देखता है और सम्पूर्ण जगत् को मायामात्र समझता है, तब वह मुक्त हो जाता है।
- जब योगी को जन्म, जरा, दुःख और समस्त व्याधियों के एकमात्र औषध अद्वितीय ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है, तब वह शिवरूप हो जाता है। जिस प्रकार संसार में नद एवं नदियां सागर के साथ एकरूपता को प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार यह आत्मा (जीवात्मा) निष्कल अक्षर ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त करता है। इसलिये विज्ञान का ही अस्तित्व है, प्रपञ्च और संसरण-शील संसार का अस्तित्व नहीं है। विज्ञान अज्ञान से आवृत रहता है, इसी से संसारी जीव मोह में पड़ता है। ज्ञान निर्मूल, सूक्ष्म निर्विकल्प और अव्यय है, अज्ञान के अतिरिक्त जो कुछ है, वह विज्ञान है- ऐसा मेरा मत है। यह आप लोगों को सांख्य नामक परामोत्तम ज्ञान बतलाया है। यह सम्पूर्ण वेदान्त का सार है। इसमें चित्त की एकाग्रता ही योग है। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से योग प्रवर्तित (स्थिर) होता है।

योग तथा ज्ञान सम्पन्न पुरुष के लिये कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। योगी जिसे प्राप्त करते हैं, सांख्य वेत्ताओं के द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। जो सांख्य और योग को एक ही समझता है, वह तत्त्व ज्ञानी होता है।

- विप्रो ! ऐश्वर्य (आठ प्रकार की सिद्धियों एवं अन्य वैभव आदि) में आसक्त चित्त अन्य योगीजन उसी में डूबे रहते हैं, अतएव उन्हें आत्मतत्त्व प्राप्त नहीं होता- ऐसा श्रुतिवचन है। जो सर्वव्यापी, दिव्य ऐश्वर्यरूप, अचल और महत् (सर्वश्रेष्ठ) है, उसे ज्ञान और योगसम्पन्न पुरुष देहान्त होने पर प्राप्त करते हैं। सम्पूर्ण वेदों में सर्वात्मा, सर्वतोमुख के रूप में प्रतिपादित, अव्यक्त, मायावी (माया का अधिष्ठाता) तथा परमेश्वररूप मैं ही यह आत्मा हूं।
- मैं अर्न्तयामी, सनातन, सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर और सभी ओर हाथ-पैर वाला हूं। हाथ और पैर के बिना भी मैं गति करने एवं ग्रहण करने वाला हूं। सभी प्राणियों के हृदय में स्थित हूं। बिना नेत्रों के भी देखता हूं और बिना कानों के भी मैं सुनता हूं। मैं इस समस्त प्रपञ्च को जानता हूं, परन्तु मुझे कोई नहीं जानता। तत्त्वदर्शी लोग मुझे अद्वितीय महान् पुरुष कहते हैं। सूक्ष्मदर्शी ऋषि गुणरहित और विश्वब्द्धरूप आत्मा के हेतुस्वरूप उस श्रेष्ठ ऐश्वर्य (सर्वोत्कृष्ट-ज्ञान) का दर्शन (साक्षात्कार) करते हैं। ब्रह्मवादियो ! मेरी माया से मोहित होने के कारण देवता भी जिस तत्त्व को नहीं जानते उसे मैं कहता हूं, आप लोग ध्यान लगाकर सुनें- मायातीत मैं स्वभावतः सबका अनुशास्ता नहीं हूं, तथापि इस जगत् को मैं प्रेरित करता हूं, विद्वान् लोग इसका कारण जानते हैं (वह कारण अहैतु की कृपा है)। मेरा जो अत्यन्त गुह्यतम तथा सर्वव्यापी देह है, तत्त्वदर्शी योगीजन उसमें प्रविष्ट होते हैं और मेरे

अविनाशी सायुज्य (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं। मेरी विश्वरूपिणी माया उनके वश में रहती है। वे मेरे साथ (मेरा सायुज्य प्राप्तकर) परम शुद्धि और निर्वाण को प्राप्त करते हैं। मेरी कृपा से सैकड़ो-करोड़ो कल्पों में भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता। योगीन्द्रो ! यह वेदों का अनुशासन है। ब्रह्मवादियों को चाहिये कि वे मेरे द्वारा कहे गये इस सांख्य योग समन्वित विज्ञान को अपने पुत्र, शिष्य एवं योगियों के अतिरिक्त और किसी दूसरे को प्रदान न करें।

।।तीसरा-अध्याय।।

{अव्यक्त शिवतत्त्व से सृष्टि का कथन, परमात्मा के स्वरूप का वर्णन तथा प्रधान, पुरुष एवं महदादि तत्त्वों से सृष्टि का क्रम-वर्णन, शिवस्वरूप का निरूपण}

ईश्वरने कहा- अव्यक्त (तत्त्व) से काल, प्रधान तथा परम पुरुष उत्पन्न हुए। उन (कालादि) से यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ, इसलिये यह जगत् ब्रह्ममय है। जिसके हाथ और पैर का प्रसार सर्वत्र है, जिसके नेत्र, मस्तक, मुख एवं कर्ण सर्वत्र वर्तमान है एवं जो समस्त विश्व को आवृतकर स्थित है, वही ब्रह्म है। वह सभी इन्द्रियों के गुणों के आभास वाला है, अर्थात् सभी इन्द्रियों के गुण उसमें प्रतीत होते हैं, किन्तु सभी इन्द्रियों से रहित है। वह सभी का आधार है, सदा आनन्दस्वरूप, अव्यक्त और द्वैत से रहित (अद्वैत तत्त्व) है। वह सभी उपनामों से रहित (निरूपमेय) इन्द्रियों द्वारा प्रमाणों से ज्ञात न होने योग्य, निर्विकल्प, निराभास, सभी का आश्रय, परम अमृतस्वरूप, अभिन्न, भिन्नरुप से स्थित (प्रतीत), शाश्वत, ध्रुव, अव्यय, निर्गुण और परम व्योमरूप है, उसे विद्वान् लोग जानते हैं।

- वह सभी प्राणियों की आत्मा है, वह बाहर भीतर सर्वत्र व्याप्त रहने वाला परम तत्त्व है। मैं (भी) वही सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानात्मा परमेश्वर हूं। मुझ अव्यक्त स्वरूपवाले के द्वारा ही इस विश्व का विस्तार हुआ है। सभी प्राणी मुझमें ही अवस्थित हैं, जो उसे जानता है, वह वेदज्ञ है। प्रधान और पुरुष ये ही दो तत्त्व कहे गये हैं। अनादि उत्कृष्ट काल को ही उन दोनों का परम संयोजक कहा गया है। प्रधान, पुरुष और काल- ये तीनो तत्त्व अनादि, अन्तरहित, अव्यक्त (परम तत्त्व) में स्थित हैं। वह (परम तत्त्व) तदात्मक (प्रधान आदिका प्रेरक होते हुए भी) तद्भिन्न (उनसे सर्वथा असंस्पृष्ट) है, वह (परम तत्त्व) मेरा ही रुप है, यह विद्वान लोग ही जानते हैं। जो महत् (तत्त्व) से लेकर विशेष पर्यन्त समस्त संसार को उत्पन्न करती है, वह सभी देहधारियों को मोहित करने वाली प्रकृति कही गयी है। जो प्रकृतिस्थ होकर प्रकृति के गुणों का उपभोग करता है, वह पुरुष है। अंहकार (अहं-तत्त्व) से विमुक्त होने के कारण वह पुरुष पचीसवां तत्त्व कहा गया है। प्रकृति के प्रथम विकार को महान् आत्मा (महतत्त्व) कहते हैं। उस विज्ञान शक्ति से सम्पन्न विज्ञाता ('अहम' अर्थात् अभिमान का मूल कारण) अंहकार उत्पन्न होता है। वही एक महान आत्मा 'अहंकार' कहलाता है। तत्त्वचिन्तकों के द्वारा वह 'जीव' तथा 'अन्तरात्मा' इस नाम से कहा गया है।
- जीवन में उसी के द्वारा सुख एवं दुःख आदि सभी का अनुभव होता है। वह विज्ञानस्वरूप (विविध सांसारिक ज्ञान का मूल) है। उस अंहकार का उपकारक मन है। उससे अविवेक उत्पन्न होता है और फिर उस अविवेक से पुरुष का संसार बनता है। प्रकृति से काल का सम्पर्क होने से वह अविवेक उत्पन्न होता है। काल ही प्राणियों की सृष्टि करता है और काल ही प्रजाओं का संहार करता है। सभी काल के वशीभूत हैं,

काल किसी के वश में नहीं है। वह सनातन काल अन्तःप्रविष्ट होकर इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन करता है। इस काल को भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ तथा पुरुषोत्तम कहा जाता है। मनीषियों ने मन को सभी इन्द्रियों से उत्कृष्ट एवं मन से अधिक उत्कृष्ट अंहकार से उत्कृष्ट महान् को (महतत्त्व) बतलाया है। महत् से उत्कृष्ट अव्यक्त, अव्यक्त से उत्कृष्ट पुरुष तथा पुरुष से उत्त्कृष्ट भगवान् प्राण हैं। यह सम्पूर्ण संसार उसी से है। प्राण से परतर व्योम है और व्योम से अतीत अग्नि ईश्वर है। मैं वही सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हूं। मुझसे उत्कृष्ट और कोई तत्त्व नहीं है। मुझे जान लेने से मुक्ति हो जाती है। इस संसार में एकमात्र मुझ अव्यक्त, व्योमरूप महेश्वर को छोड़कर कोई भी स्थावर-जंगमात्मक तत्त्व नित्य नहीं है अर्थात् महेश्वर को छोड़कर सब कुछ अनित्य है। वही मैं मायावी तथा मायामय देव काल के संसर्ग से सम्पूर्ण संसार की सदा सृष्टि करता हूं और फिर संहार करता हूं। मेरे सानिध्य में ही यह काल सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है। वेद का यह कथन है कि अनन्तात्मा ही उस काल को इस कार्य में नियोजित करता है।

।।चौथा-अध्याय।।

{शिवभक्ति का माहात्म्य, शिवोपासना की सुगमता, ज्ञानरूप शिवस्वरूप का वर्णन, शिव की तीन प्रकार की शक्तियों का प्रतिपादन, शिव के परम तत्त्व का निरूपण}

ईश्वर बोले- हे ब्रह्मवादियो ! आप लोग ध्यान लगाकर सुनें। जिससे यह सभी प्रवर्तित होता है, उस देवाधिदेव के माहात्म्य को बताता हूं। मैं न तो विविध प्रकार के तप से, न दान से और न यज्ञों से ही जानने

योग्य हूं। बिना उत्तम भक्ति के मनुष्य मुझे प्राप्त नही कर सकता। सर्वत्र व्याप्त रहने वाला मैं सभी भावों के अन्तःमें प्रविष्ट रहता हूं। परन्तु मुनीश्वरो ! मुझ सर्व-साक्षी को संसार जान नहीं पाता। जिसके भीतर यह सब प्रतिष्ठित है और जो परम तत्त्व सभी के अन्तःमें स्थित है, मैं वही धाता, विधाता, काल, अग्नि तथा सभी ओर मुखवाला हूं। सभी मुनि, देवता, ब्रह्मा, मनु, इन्द्र और जो अत्यन्त तेजस्वी हैं, वे भी मुझे नहीं देख पाते। वेद मुझ अद्वितीय परमेश्वर की निरन्तर स्तुति किया करते हैं। ब्राह्मण अनेक प्रकार के वैदिक यज्ञों के द्वारा अग्निस्वरूप मेरा यजन करते हैं। सभी लोक तथा लोकपितामह ब्रह्मा मुझे नमस्कार करते हैं। योगीजन सभी प्राणियों के अधिपति (मुझ) ईश्वर देव का ध्यान करते हैं। सबकी आत्मा और सर्वव्ययापी मैं ही सभी देवों के शरीरों को धारण कर सम्पूर्ण हवियों का भोक्ता एवं सभी फलों का प्रदाता हूं। धार्मिक वेदनिष्ठ विद्वान मेरा दर्शन करते हैं। जो भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं, मैं नित्य उनके समीप में रहता हूं। धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य मेरी उपासना करते हैं। मैं उन्हें आनन्दस्वरूप परमपद नामक स्थान प्रदान करता हूं।

- अन्य भी जो विपरित कर्म करने के कारण शूद्र आदि निम्न जातियों में हैं, भक्तिपरायण होने पर वे भी मुक्त हो जाते हैं और यथासमय मुझमें लीन हो जाते हैं। मेरे भक्त विनाश को प्राप्त नहीं होते, मेरे भक्त पापों से रहित हो जाते हैं। मैंने प्रारम्भ में ही यह प्रतिज्ञा कर रखी है कि मेरे भक्त का विनाश नहीं होता। जो उस भक्त की निन्दा करता है, वह देवाधिदेव शंकर की ही निन्दा करता है और जो उस भक्त की भक्तिपूर्वक पूजा करता है, समझो कि वह सदा मेरी ही पूजा करता है। मेरी आराधना के लिये जो नियमपूर्वक पत्र, पुष्प, फल तथा जल मुझे प्रदान

करता है, वह मेरा प्रिय भक्त है, ऐसा समझना चाहिये। मैंने ही संसार की सृष्टि के प्रारम्भ में परमेष्ठी ब्रह्मा की सृष्टिकर अपने से प्रादुर्भूत वेदों को उन्हें प्रदान किया। मैं ही सभी योगियों का अव्यय गुरु, धार्मिकजनों का रक्षक तथा वेद से द्वेष रखने वालों को विनष्ट करने वाला हूं।

- मैं ही योगियों को समस्त से मुक्त करनेवाला हूं। मैं ही संसार का कारण और सम्पूर्ण संसार से विवर्जित (असंसृष्ट) हूं। मैं ही संहार करने वाला और मैं ही सृष्टि तथा पालन करने वाला मायावी हूं। मेरी शक्ति माया है, वह संसार को मोहित करने वाली है। मेरी ही जो पराशक्ति है, वह 'विद्या' इस नाम से कही जाती है। योगियों के हृदय में रहते हुए मैं उस माया को नष्ट कर देता हूं। सभी शक्तियों का प्रवर्तन करने वाला तथा निर्वतन करने वाला मैं ही हूं। मैं सभी का आधार और अमृत का आश्रय-स्थान हूं। मुझमें अधिष्ठित और मेरी स्वरूपभूता जो सबके अन्तर में स्थित अद्वितीय शक्ति है, वह ब्रह्मा का रूप धारणकर विविध प्रकार के संसार की सृष्टि करती है और जो मेरी दूसरी विपुल शक्ति है, वह अनन्त, जगन्नाथ, जगन्मय और नारायण का रूप धारण कर संसार की स्थापना (पालन आदि कार्य) करती है।
- मेरी तीसरी जो रुद्ररूपिणी काल नामक महती तामसी शक्ति है, वह समस्त जगत् का संहार करती है कुछ लोग ध्यान द्वारा, कुछ दूसरे लोग ज्ञान द्वारा, कुछ लोग भक्तियोग के द्वारा और कुछ कर्मयोग के द्वारा मेरा दर्शन करते हैं। जो किसी अन्य प्रकार से नहीं, अपितु केवल ज्ञान द्वारा नित्य मेरी आराधना करता है, वह सभी भक्तों में मुझे प्रिय है, प्रियतर है अर्थात् अत्यन्त प्रिय है। अन्य भी जो मेरी आराधना करने के अभिलाषी तीन प्रकार के भक्त हैं वे भी मुझे ही प्राप्त करते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। मेरे द्वारा ही यह सम्पूर्ण प्रधान और पुरुषरूप संसार व्याप्त

है। यह विश्व मुझमें ही स्थित है और मेरे द्वारा ही संसार प्रेरित किया जाता है। हे विप्रो ! परम योग में ही सदा निरत रहने वाला मैं प्रेरक नहीं हूं, तथापि सम्पूर्ण जगत् को मैं प्रेरित करता हूं, इस रहस्य को जो जानता है, वह अमर हो जाता है। अपने स्वभाववश प्रर्वतमान समस्त जगत् का मैं साक्षीमात्र हूं। महायोगेश्वर भगवान् काल स्वयं ही जगत् की सृष्टि करते हैं। विद्वानों ने शास्त्रों में जिसे योग, योगी और माया कहा है, वह सब प्रभु महादेव भगवान् महायोगेश्वर ही हैं अर्थात् योगेश्वर महादेव में ही यह सब कल्पित है।

- परमेष्ठि सभी तत्त्वों से परे हैं अतः सभी तत्त्वों का महत्त्व ही भगवान् ब्रह्मा के रूप में प्रसिद्ध है और ये भगवान् ब्रह्मा ब्रह्ममय एवं अमल हैं। जो मुझे ही महायोगेश्वरों का भी ईश्वर समझता है, वह निर्विकल्प (समाधि) योग से युक्त होता है, इसमें संदेह नहीं। परमानन्द का आश्रयण करने वाला वही मैं प्रेरित करने वाला देवता हूं। मैं योगी निरन्तर नृत्य करता प्राणिमात्र के हृदय में सदा विद्यमान रहता हूं, जो ऐसा जानता है वह वेदज्ञ है यह अत्यन्त गुह्य ज्ञान सभी वेदों में प्रतिष्ठित है। इसे प्रसन्नचित्त, धार्मिक तथा अग्निहोत्री को प्रदान करना चाहिये।

।।पांचवा-अध्याय।।

{ऋषियों को दिव्य नृत्य करते हुए भगवान् शंकर का आकाश में दर्शन, मुनियों द्वारा महेश्वर की भावपूर्ण स्तुति करना}

व्यासजी बोले- इतना कहकर योगियों के परमेश्वर भगवान् शिव परम ऐश्वर्यमय भाव प्रदर्शित करते हुए नृत्य करने लगे। उन मुनियों ने परम तेजोनिधि ईशान महादेव को विष्णु के साथ नृत्य करते हुए स्वच्छ आकाश में देखा। योग के तत्त्व को जानने वाले संयतचित्त योगी ही जिन्हें जान

पाते हैं, उन सभी प्राणियों के ईशको आकाश में मुनियों ने देखा। यह सम्पूर्ण जगत् जिनकी माया से निर्मित है और जिनके द्वारा यह जगत् प्रेरित होता है, उन साक्षात् विश्वेश को विप्रों ने नृत्य करते हुए देखा। जिनके चरण-कमल का स्मरण करके पुरुष अज्ञान से उत्पन्न भय से छुटकारा पा लेता है, उन्हीं भूतेश को मुनियों ने नृत्य करते हुए देखा।

- निद्रारहित, श्वासजयी, शान्त और भक्तिपरायण लोग जिनके ज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन करते हैं, विप्रजनों को वे ही योगी दिखलायी पड़े। जो भक्तवत्सल देव प्रसन्न होने पर शीघ्र ही अज्ञान से मुक्त कर देते हैं, उन्हीं मुक्त करने वाले परम रुद्र को उन्होंने आकाश में देखा। ब्राह्मणों ने हजारों सिरवाले, हजारों चरणों की आकृति से युक्त, हजारों बाहुवाले, जटायुक्त, अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले, व्याघ्र के चर्म को वस्त्ररूप में धारण करने वाले, महान् भुजा में त्रिशूल धारण करने वाले, हाथ में दण्ड धारण किये, वेदत्रयीरूप तीन नेत्रवाले, सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप नेत्रधारी, अपने तेज से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आवृतकर स्थित हुए, भंयकर दाढ़ों वाले, दुर्धर्ष, करोड़ो सूर्योंके समान आभावाले, अण्ड के अन्दर स्थित और अण्ड के बाहर स्थित, परम सर्वोत्कृष्ट, बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त, अग्नि-ज्वाला उत्पन्न करने वाले और सम्पूर्ण जगत् को जलाने वाले विश्वकर्मा (समस्त कर्मों के अधिष्ठाता) देव को नृत्य करते हुए देखा।
- ब्रह्मवादी मुनियों ने महादेव, महायोगस्वरूप, देवों के भी देव, पशुपति ईशान, ज्योतियों के भी अविनश्वर ज्योतिःस्वरूप, पिनाकी, विशालाक्ष, भव-रोगियोंके औषध, कालात्मा, काल के भी काल, देवाधिदेव, महेश्वर, उमापति, विरूपाक्ष, परम योगानन्दमय, ज्ञान-वैराग्यके निधान, सन्तान ज्ञानयोग, शाश्वत ऐश्वर्य एवं विभवरूप, धर्म के आधार, दुरासद

(दुष्प्राप्य), महेन्द्र तथा उपेन्द्र (विष्णु) द्वारा नमस्कृत, महर्षिगणों द्वारा वन्दित, सभी शक्तियों के आधार, महायोगेश्वरों के भी ईश्वर, योगियों के परम ब्रह्म, योगियों के योग द्वारा वन्दित, योगियों के हृदय में स्थित, योगमाया से समावृत, जगत् के योनिरूप तथा अनामय नारायण को क्षणमात्र में ईश्वर अर्थात् शंकर के साथ एकाकार होते हुए देखा।

- रुद्र के उस ऐश्वर्यमय नारायणात्मक रूप को देखकर ब्रह्मवादी संतों ने अपने-आप को कृतार्थ माना। सनत्कुमार, सनक, भृगु, सनातन, सनन्दन, रुद्र, अंगिरा, वामदेव, शुक्र, महर्षि अत्रि, कपिल तथा मरीचि-इन ऋषियों ने पद्मनाभ विष्णु को वामभाग में विराजित किये हुए उन जगत् के नियामक रुद्र का दर्शन किया और हृदय में स्थित उनका ध्यान करके सिर से विनयपूर्वक प्रणामकर पुनः अपने मस्तक पर अंजलि बांधकर प्रणाम किया। ओंकार का उच्चारण करने के उपरान्त अपने शरीर के भीतर (हृदयरूपी) गुहा में निहित उन देव का दर्शन करके आनन्द से परिपूर्ण विस्तृत आत्मावाले वे (मुनिगण) वैदिक मंत्रों के द्वारा उन देव की स्तुति करने लगे।

मुनियोंने कहा- आप एकमात्र ईश्वर, पुराणपुरुष, प्राणेश्वर, अनन्त योगरुप, हृदय में संनिविष्ट, प्रचेता, पवित्र एवं ब्रह्ममय रुद्र को हम सभी प्रणाम करते हैं। इन्द्रियों का दमन करने वाले तथा शान्त मुनिगण ध्यान के द्वारा अपने ही शरीर में अचल, निर्मल, स्वर्ण के समान वर्ण वाले, ब्रह्मयोनि, उत्कृष्ट से भी अत्यन्त उत्कृष्ट (प्राणिमात्र के हृदय में विद्यमान) आप कवि का दर्शन करते हैं। संसार की सृष्टि आपसे ही हुई है। आप सभी के आत्मरूप और परम अणुरूप हैं। महापुरुष आपको ही सब कुछ और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा महान् से भी महान् कहते हैं।

- जगत् के अन्तरात्मा-स्वरूप हिरण्यगर्भ पुराणपुरुष आपसे उत्पन्न हुए हैं। आप द्वारा उत्पन्न किये गये उस पुराणपुरुष ने उत्पन्न होते ही यथाविधि सम्पूर्ण संसार की सृष्टि की। आपसे ही सभी वेद उत्पन्न हुए हैं और अन्त में आपमें ही वे स्थिति पाते हैं। हम अपने हृदय में स्थित जगत् के कारणरूप आपको नृत्य करते हुए देख रहे हैं। आपके द्वारा ही इस ब्रह्मचक्र को चलाया जाता है, आप मायावी और जगत् के एकमात्र स्वामी हैं। हम दिव्य नृत्य करने वाले आप योगात्मा चित्पति की शरणमें आये है, आपको हम नमस्कार करते हैं। परम आकाश के मध्य में नृत्य कर रहे आपका हम दर्शन करते हैं और आपकी महिमा का स्मरण करते हैं। अनेक रूपों में स्थित सर्वात्मा ब्रह्मानन्द का हम बार-बार अनुभव कर रहे हैं। आपका वाचक ओंकार मुक्ति का बीज है, आप अक्षर तथा प्रकृति में गूढस्वरूप से स्थित हैं। इसलिये संतजन आपको सत्यस्वरूप और आपके प्रकाश को स्वयं प्रकाशित बताते हैं। सभी वेद सतत आपकी स्तुति करते हैं। दोषरहित ऋषिगण आपको नमस्कार करते हैं तथा शान्त-चित्त, सत्यसंध ब्रह्मनिष्ठ यतिजन आप सर्वश्रेष्ठ में प्रवेश करते हैं। बहुत शाखाओं वाला एक अनन्त वेद आपके अद्वितीय एवं एकरूप का बोध कराता है। जो लोग जानने योग्य आपकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हीं को शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है, अन्य किसी को नहीं। आप ईश, अनादि, तेजोराशि, ब्रह्मा, विश्वरूप, परमेष्ठि और वरिष्ठ हैं। नित्य मुक्त और स्वयं ज्योतिरूप अचल योगी स्वात्मानन्द का अनुभव कर आप में प्रविष्ट होते हैं।
- आप अद्वितीय रुद्र ही इस विश्व की सृष्टि करते हैं। विश्वरूप आप सबका पालन करते हैं और यह विश्व अन्त में आपमें ही विलीन हो जाता है। हम आपको नमस्कार करते हैं और आपके शरणागत हैं।

आपको अद्वितीय, कवि, एक रुद्र, प्राण, बृहत्, हरि, अग्नि, ईश, इन्द्र, मृत्यु, अनिल, चेकितान, धाता, आदित्य और अनेकरूप कहा जाता है। आप अविनाशी और परम जानने योग्य हैं। आप ही इस विश्व के परम आश्रय हैं। आप अव्यय, शाश्वत धर्मरक्षक, सनातन और पुरुषोत्तम हैं। आप ही विष्णु और आप ही चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। आप ही प्रधान स्वामी भगवान् रुद्र हैं। आप विश्व की नाभि, प्रकृति, प्रतिष्ठा, सर्वेश्वर और परम ईश्वर हैं। आपको अद्वितीय, पुराणपुरुष, आदित्य के समान वर्णवला, तमोगुण से अतीत, चिन्मात्र, अव्यक्त, अचिन्तयरूप, आकाश, ब्रह्म, शून्य, प्रकृति और निर्गुण कहते हैं। जिसके भीतर यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है तथा जो विकार रहित निर्मल और अद्वितीय रूप है, वह आपका रूप अचिन्तय है और उसके भीतर समस्त तत्त्व प्रतीत होते हैं।

- हम सभी योगेश्वर, अनन्तशक्ति रुद्र, उत्कृष्ट आश्रयस्वरूप पवित्र ब्रह्ममूर्ति आपको नमस्कार करते हैं। भूतोंके अधिपति महेश ! प्रसन्न होईये, हम आपकी शरणमें हैं। आपके चरणकमल का स्मरण करने से सम्पूर्ण संसार का बीज अर्थात् कर्म नष्ट हो जाता है। मन का नियमन कर, शरीर को संयमित कर हम सभी अद्वितीय ईश्वर आपको प्रसन्न करते हैं। भव, भवोद्भव, काल, सर्व तथा हर आपको नमस्कार है। जटाधारी रुद्र आपको नमस्कार है। अग्निरूप देव शिव ! आपको नमस्कार है, इस प्रकार स्तुति करने पर उन भगवान् कपर्दी वृषवाहन देवभव ने अपने उस उत्कृष्ट विराट रूप को समेट लिया और वे अपनी प्रकृति में स्थित हो गये। मुनियों ने पहले के समान स्थित भूतभव्येश भव और नारायणदेव को देखकर आश्चर्यचकित होकर यह वाक्य कहा- भगवन् ! भूतभव्येश ! गोवृषाङ्कितशासन ! सनातन ! आपके परम रूप का दर्शन कर हम लोग

संतुष्टचित्त हो गये हैं। आपकी कृपा से हम सभी को निर्मल, परात्पर, परमेश्वरस्वरूप आपकी अव्यभिचारिणी भक्ति प्राप्त हुई है। शंकर ! इस समय हम लोग आप परमेष्ठि के उस माहात्म्य को एवं जो नित्य यथार्थस्वरूप है उसे पुनः सुनना चाहते हैं। योगसिद्धियों को प्रदान करने वाले महेश्वर ने उन योगियों का वचन सुनकर तथा विष्णु की ओर देखकर गम्भीर वाणी में कहा-

।। छठा-अध्याय ।।

{ईश्वर शंकर द्वारा ऋषिगणों को अपना सर्वव्यापी स्वरूप बतलाना तथा अपनी भगवत्ता का और इस ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति का निरूपण करना}

ईश्वरने कहा- हे ऋषिगणों ! आप सभी सुनें। मैं परमेष्ठि ईश के उस माहात्म्य का यथावत् वर्णन कर रहा हूं ,जिसे वेदज्ञ लोग जानते हैं। मैं सनातन सर्वात्मा सभी लोकों का एक मात्र निर्माण करने वाला, सभी लोकों का अद्वितीय रक्षक और सभी लोकों का एकमात्र संहार करने वाला हूं। सभी वस्तुओं का अन्तर्यामी पिता मैं ही हूं। मध्य तथा अन्त सब कुछ मुझमें स्थित है, किंतु मैं सर्वत्र स्थित नहीं हूं अर्थात् मेरी कोई सीमा नहीं है। विप्रो ! आप लोगों ने मेरे जिस अद्‌भुत रुप को देखा है, वह केवल मेरी उपमा (प्रतीक) है, जिसे मैंने अपनी माया द्वारा दिखलाया। मैं सभी पदार्थों के भीतर स्थित (व्याप्त) रहते हुए सम्पूर्ण जगत् को प्रेरित करता हूं। यह मेरी क्रियाशक्ति है। यह विश्व जिसके द्वारा चेष्टा करता है और जिसके स्वभाव का अनुसरण करता है,

कालरूप वही मैं सम्पूर्ण कलात्मक (अपने अंशरूप) जगत् को प्रेरित करता हूं।

- मुनिश्रेष्ठो ! मैं एक अंश से सम्पूर्ण संसार की रचना करता हूं और दूसरे रूप (अंश) से संहार करता हूं- इस प्रकार की ये दोनों अवस्थाएं मेरी ही हैं। आदि, मध्य और अन्तरहित माया-तत्त्व का प्रर्वतन करने वाला मैं सृष्टि के आरम्भ में प्रधान तथा पुरुष दोनों को क्षुब्ध (प्रेरित) करता हूं। उन दोनों के परस्पर संयोग से विश्व उत्पन्न होता है। महत्-तत्त्वादि के क्रम से मेरा ही तेज विस्तार को प्राप्त होता है। जो सारे संसार के साक्षी और कालचक्र को चलाने वाले हिरण्यगर्भ मार्तण्ड (सूर्य) हैं, वे भी मेरे ही शरीर से उत्पन्न हुए हैं। द्विजो ! कल्प के आदि में मैंने ही उन्हें अपना दिव्य, ऐश्वर्यमय सनातन ज्ञानयोग और अपने से उत्पन्न चारों वेद प्रदान किये। वे मेरे भाव से भावित देव ब्रह्मा मेरे आदेश से मेरे उस दिव्य ऐश्वर्य को स्वयं सदा वहन करते हैं। सभी लोकों का निर्माण करने वाले और सब कुछ जानने वाले आत्मसम्भव मुझसे ही उत्पन्न, वे ब्रह्मा मेरे निर्देश से चार मुख वाले होकर सृष्टि की रचना करते हैं। जो लोकों को उत्पन्न करने वाले अव्यय अनन्त नारायण हैं और जगत् का परिपालन करते हैं, वे भी मेरी ही परममूर्ति हैं। सभी प्राणियों का संहार करने वाले जो प्रभु कालात्मक रुद्र हैं, वे ही मेरी आज्ञा से निन्तर संहार करते रहते हैं, वे भी मेरी मूर्ति हैं।
- जो देवताओं को हव्य (हवनीय द्रव्य) पहुंचाते हैं और हव्य ग्रहण करने वाले पितरोंको हव्य पंहुचाते हैं तथा जो पाक में (सब कुछ पचा लेनेमें) समर्थ हैं, वे अग्निदेव भी मेरी ही शक्ति से प्रेरित होकर यह सब करते हैं। ईश्वर (शंकर) के निर्देश से ही भगवान् वैश्वानर अग्नि रात-दिन ग्रहण किये गये आहार को पचाते रहते हैं। सम्पूर्ण जल के मूल कारण

जो देवश्रेष्ठ वरुण हैं, वे भी ईश्वर के निर्देश से सम्पूर्ण विश्व को जीवन (जल) प्रदान करते हैं, जो प्राणियों के भीतर और बाहर वर्तमान रहने वाले वायुदेव हैं, वे भी मेरी आज्ञासे प्राणियों के शरीरों को धारण करते हैं। मनुष्यों को जीवीत रखने वाले जो देवताओं के अमृत के निधान सोमदेव (चन्द्रमा) हैं, वे भी मेरे ही निर्देश से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। जो अपने प्रकाश से सम्पूर्ण संसार को सदा प्रकाशित करते हैं, वे सूर्यदेव भी मेरी ही आज्ञा से सृष्टि का विस्तार करते हैं। जो सारे संसार के शासक, सभी देवताओं के ईश्वर तथा यज्ञ करनेवालों को फल प्रदान करने वाले इन्द्रदेव हैं, वे भी मेरी आज्ञा से प्रवृत्त होते हैं। जो दुष्टों के शासक हैं और नियम के अनुसार व्यवहार करने वाले विवस्वान् के पुत्र यमदेव हैं, वे भी देवाधिदेव शंकर के निर्देश से व्यवहार करते हैं। जो सभी प्रकार के सम्पत्तियों के स्वामी और धन प्रदान करने वाले कुबेर हैं, वे भी ईश्वर के नियोग से ही सदा प्रवृत्त होते हैं। जो सभी राक्षसों के स्वामी हैं तथा तमोगुणियों को अपने कर्म का फल प्रदान करने वाले हैं, वे निर्ऋतिदेव मेरे ही निर्देश से सदा प्रवर्तित होते हैं। जो बेतालगणों और भूतों के स्वामी और भक्तों को भोगरूपी फल प्रदान करने वाले ईशानदेव हैं, वे भी मेरी आज्ञा में स्थित रहते हैं। जो अंगिरा के शिष्य, रुद्रदेवके गणों में अगग्रण्य और योगियों के रक्षक हैं, वे वामदेव भी मेरी ही आज्ञा द्वारा नित्य व्यवहार करते हैं। जो सम्पूर्ण संसार के पूज्य, विघ्नकारक धर्मनेता विनायक हैं, वे भी मेरे आदेश से चलते हैं। जो ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, देवोंके सेनापति स्वयम्भू प्रभु स्कन्द हैं, वे भी नित्य विधि की प्रेरणासे प्रेरित होते हैं। जो प्रजाओं के पति मरीचि आदि महर्षि हैं, वे भी परात्पर (परमेश्वर) की आज्ञा से ही विविध लोकों की सृष्टि करते हैं।

- जो सभी प्राणियों की श्री (शोभा) हैं और विपुल ऐश्वर्य प्रदान करती हैं, वे नारायण की पत्नी लक्ष्मी मेरे ही अनुग्रह से व्यवहार करती हैं। जो सरस्वती देवी विपुल वाणी प्रदान करती हैं, वे भी ईश्वर के नियोग से प्रेरित होकर प्रवर्तित होती हैं। जो सभी पुरुषों को घोर नरकों से तारने वाली सावित्री देवी कही गयी हैं, वे भी देव की आज्ञा के अनुसार चलने वाली हैं। ध्यान करने पर ब्रह्मविद्या को प्रदान करने वाली जो श्रेष्ठ पार्वती देवी हैं, वे भी विशेष रूप से मेरे ही वचनों का पालन करती हैं। अनन्त महिमा वाले और सभी देवताओं के स्वामी जो अनन्त शेष हैं, वे भी देव शंकर के निर्देश से ही संसार को सिर पर धारण करते हैं। जो संवर्तक अग्नि नित्य वडवा के रूप में स्थित हैं, वे भी ईश्वर की आज्ञा से ही सम्पूर्ण समुद्र को पीते रहते हैं। इस संसार में अत्यन्त तेजस्वी जो चौदह मनु हैं, वे सभी मुझ ईश्वर के आदेश से सभी प्रजाओं का पालन करते हैं। आदित्य, वसुगण, रुद्र, मरुद्गण, अश्विनी कुमार तथा अन्य सभी देवता मेरी ही आज्ञा में प्रतिष्ठित हैं। गन्धर्व, गरुड, ऋक्ष, सिद्ध, साध्य, चारण, यक्ष, राक्षस तथा पिशाच- ये सभी स्वयम्भू की आज्ञा में ही स्थित हैं। कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त, दिन, रात, ऋतुएं, पक्ष तथा मास ये प्रजापति शिव के शासन में स्थित हैं। युग, मन्वन्तर, पर तथा परार्ध-ये सभी तथा अन्य काल के सभी भेद मेरे ही शासन में स्थित रहते हैं। (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज तथा जरायुज-ये) चार प्रकार के प्राणी और स्थावर-जंगात्मक जगत् मुझ परमात्मा देव के निर्देश से ही प्रवर्तित होते हैं। सभी पाताल और भुवन, सभी ब्रह्माण्ड स्वयम्भू परमेश्वर की आज्ञा से प्रवर्तित हैं। बीते हुए भी जो पदार्थों के समूहों सहित असंख्य ब्रह्माण्ड थे, वे मेरी ही आज्ञा से सर्वत्र प्रवृत्त थे। आगे भी जो ब्रह्माण्ड होंगे, वे भी सदैव परात्पर परमात्मा की आज्ञा का आत्मगत

(अपने आधीन) वस्तुओं के द्वारा पालन करेंगे। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, भूतादि (तामस अंहकार) और आदि प्रकृति- ये सभी मेरी आज्ञा से कार्य करते हैं। जो सम्पूर्ण संसार की योनि और सभी देहधारियों को मोहित करने वाली माया है, वह भी ईश्वर के निर्देश से ही नित्य विभिन्न रूपों में विवर्तित होती रहती है। जो देहधारियों के आत्मस्वरूप परात्पर पुरुष देव कहे जाते हैं, वे भी नित्य ईश्वर के नियोग से ही कार्य करते हैं।

- जिसके द्वारा मोहरूपी कल्मष को धोकर उस परमपद का दर्शन होता है, वह विद्या भी महेश की आज्ञा के वश में रहने वाली है। इस विषय में और अधिक क्या कहा जाये, यह संसार मेरी ही शक्ति से शक्तिमान् है। मेरे द्वारा ही सम्पूर्ण जगत् प्रेरित किया जाता है और मुझ में ही उसका लय भी हो जाता है। मैं ही भगवान्, ईश, स्वयं प्रकाश, सनातन और परमात्मा परम ब्रह्म हूं, मुझसे अतिरिक्त और कुछ भी नही है। इस प्रकार यह परमज्ञान मैंने आप लोगों से कहा, इसे जान लेने से प्राणी जन्म तथा संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

।। सातवां-अध्याय ।।

{ईश्वर (शंकरजी) द्वारा अपनी विभूतियों का वर्णन तथा प्रकृति, महत् आदि चौबीस तत्त्वों, तीन गुणों एवं पशु, पाश और पशुपति आदि का वर्णन}

ईश्वर बोले- ऋषियों ! आप सभी परमेष्ठि के प्रभाव को सुनें, जिसे जानकर पुरुष मुक्त हो जाता है और फिर संसार में नहीं गिरता। जो पर से परतर, शाश्वत, निष्कल, ध्रुव, नित्यानन्द, निर्विकल्प ब्रह्म है, वह मेरा

परम धाम है। मैं ब्रह्मज्ञानियों में सर्वतोमुख स्वयम्भू ब्रह्मा हूं। मायावियों में मैं अव्यय पुराण देव हरि हूं। योगियों में मैं शम्भु और स्त्रियों में गिरिराज पुत्री पार्वती हूं। मैं (द्वादश) आदित्यों में विष्णु तथा अष्ट वसुओं में पावक हूं। मैं रुद्रों में शंकर, उड़नेवाले पक्षियों में गरुड़, गजेन्द्रों में ऐरावत तथा शस्त्रधारियों में परशुराम हूं। ऋषियों में मैं वसिष्ठ, देवताओं में इन्द्र, शिल्पियों में विश्वकर्मा और सुरद्वेषी राक्षसों में प्रह्लाद हूं। मैं मुनियों में व्यास, गणों में विनायक, वीरों में वीरभद्र और सिद्धों में कपिल मुनि हूं। मैं पर्वतों में सुमेरु, नक्षत्रों में चन्द्रमा, प्रहार करनेवाले शस्त्रों में वज्र और व्रतों में सत्य व्रत हूं। मैं सर्पों में अनन्तदेव, सेनानियों में कार्तिकेय, आश्रमों में गृहस्थाश्रम और ईश्वरों में महेश्वर हूं। मैं कल्पों में महाकल्प, युगों में सत्ययुग, सभी यक्षों में कुबेर और गणेश्वरों में वीरक हूं।

- मैं प्रजापतियों में दक्ष, सभी राक्षसों में निर्ऋति, बलवानों में वायु और द्वीपों में पुष्कर द्वीप हूं। मैं मृगेन्द्रों में सिंह, यंत्रों में धनुष, वेदों में सामवेद और यजुर्मन्त्रों में शतरुद्रिय हूं, मैं जपनीय सभी मंत्रों में सावित्री मंत्र, गोपनीयों में प्रणव, (वैदिक) सूक्तों में पुरुषसूक्त, साममन्त्रों में ज्येष्ठसाम हूं। मैं सभी वेद के अर्थ को जानने वाले विद्वानों में स्वायम्भुव मनु, देशों में ब्रह्मावर्त और क्षेत्रों में अविमुक्त (वाराणसी) क्षेत्र हूं। मैं विद्याओं में आत्मविद्या, ज्ञानों में परम ईश्वरीय ज्ञान, पंचभूतों में आकाश और सत्त्वों में मृत्यु हैं। मैं (बन्धनकारक) पाशों में माया, संहार करने वालों में काल, गतियों में मुक्ति और उत्कृष्टों में परमेश्वर हूं। इस संसार में अन्य जो कुछ भी अधिक तेज और बल से सम्पन्न सत्त्व पदार्थ हैं, उन सबको मेरे ही तेज से सम्पन्न जानना चाहिये। संसार में रहने वाले सभी जीवों को पशु कहा गया है, मैं देव उनका पति (स्वामी) हूं, इसलिये

विद्वानों द्वारा 'पशुपति' कहा जाता हूं। मैं मायारूपी पाश के द्वारा अपनी लीला से इन पशुओं (जीवों) को बन्धन में डालता हूं। वेदज्ञ लोग मुझे ही पशुओं को मुक्त करने वाला मोचक कहते हैं। माया के पाश से आबद्ध जीवों को मुक्त करने वाला मुझ भूतों के अधिपति अव्यय परमात्मा को छोड़कर अन्य कोई नहीं है।

- (प्रकृति-महत्-अहंकार आदि) चौबीस तत्त्व, माया, कर्म तथा गुण- ये पशुपति के पाश और पशुओं (जीवों) को बन्धनमें डालने वाले क्लेश हैं। मन, बुद्धि, अहंकार, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश-ये आठ प्रकृति हैं और दूसरे सभी पदार्थ विकार या विकृति हैं। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ तथा पांचवीं नासिका, गुदा, जननेन्द्रिय, हाथ, पैर तथा दसवीं इन्द्रिय वाणी और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध- ये तेईस तत्त्व प्राकृत अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न होने वाले हैं। चौबीसवां तत्त्व अव्यक्त किंवा प्रधान है, वह गुणों से लक्षित होने वाला आदि, मध्य तथा अन्त से रहित और जगत् का परम कारण है। सत्त्व, रज और तम-ये तीन गुण कहे गये हैं। इन तीनों गुणों की सामयावस्था को अव्यक्त प्रकृति जानना चाहिये। सत्त्वगुण को ज्ञानस्वरूप, तमोगुण को अज्ञानस्वरूप और रजोगुण को मिश्ररूप अर्थात् ज्ञान और अज्ञान दोनों का मिश्रित रूप कहा गया है। बुद्धिकी विषमता से गुणों का भी वैषम्य होता है, ऐसा विद्वान लोग कहते हैं।
- बन्ध नाम वाले दो पाशों को धर्म और अधर्म कहा गया है। मुझे अर्पित किये गये कर्म बन्धन से मुक्ति के लिये होते हैं। आत्मा का बन्धन करने वाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश- इन क्लेश नाम वाले पांच अचल (दीर्घकाल तक स्थायी सा रहनेवाले) तत्त्वों को पाश कहा गया है। माया को इन (पांचो) पाशों का कारण कहा जाता है। अव्यक्त

मूलप्रकृतिरूप शक्ति मुझमें प्रतिष्ठित रहती है। यह मूल प्रकृति, प्रधान, पुरुष, महत्, अहंकार आदि विकारयुक्त तत्त्व-ये सब देवाधिदेव सनातनके ही रूप हैं। यही (सनातन पुरुष) बन्धन हैं, यही बन्धन में डालने वाला है। यही पाश और यही पशु है। यही सब कुछ जानता है, परंतु इसे जानने वाला कोई नहीं है। इसे ही आदि पुराण-पुरुष कहा जाता है।

।। आठवां-अध्याय ।।

{महेश्वर का अद्वितीय परमेश्वर के रूप में निरूपण, सांख्य-सिद्धान्त से तत्त्वों का सृष्टिक्रम महेश्वर के छः अंग, महेश्वर के स्वरूप के ज्ञान से परमपद की प्राप्ति}

ईश्वर बोले- श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! मैं दूसरे गुह्यतम ज्ञान को बताता हूं, जिससे यह प्राणी घोर संसार-सागरको पर कर लेता हैं। मैं ब्रह्ममय, शान्त, शाश्वत, निर्मल, अव्यय, एकाकी, अद्वितीय परमेश्वर तथा भगवान् कहलाता हूं। महद्ब्रह्म मेरी योनिरूप है, मैं उसमें मूल माया नामक गर्भ धारण करता हूं और उससे यह संसार उत्पन्न हुआ है। उसी से प्रधान, पुरुष, आत्मा, महत्तत्त्व भूतादि (तामस-अहंकार) तन्मात्राएं, पंचमहाभूत तथा इन्दियां उत्पन्न हुईं। तदनन्तर करोड़ो सूर्य के समान प्रकाशमान हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्ड में मेरी शक्ति से उपबृंहित महाब्रह्मा उत्पन्न हुए। अन्य भी जो बहुतसे प्राणी हैं, वे सभी मेरे ही स्वरूप हैं। मेरी माया से मोहित होनेके कारण वे पितामह-स्वरूप को नहीं देख पाते। सभी योनियों में जो मूर्तियां उत्पन्न होती हैं, उनकी योनि परामाया है और मुझे ही पितृस्वरूप विद्वान् लोग जानते हैं। इस प्रकार जो मुझे ही बीजरूप पितृस्वरूप प्रभु जानता है, वह सभी लोकों में धीर होता है और मोह को प्राप्त नहीं होता मैं ही सभी विद्याओं का स्वामी,

प्राणियों का परम ईश्वर, ओंकारमूर्ति, प्रजापति भगवान् ब्रह्मा हूं। जो पुरुष विनष्ट होने वाले सभी चराचर भूतों में परमेश्वर को नाशरहित और समभाव से देखता है, वही यथार्थ देखता है। जो पुरुष सब में समभाव से स्थित परमेश्वर को समानरूप से देखता है, वह स्वयं द्वारा स्वयं को नष्ट नहीं करता, इस कारण वह परम गति प्राप्त करता है। सात सूक्ष्म तत्त्वों एवं छः अंगो वाले महेश्वर को जानकर प्रधान तथा विनियोग को जानने वाला परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिज्ञान, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्तशक्ति तथा अनन्तशक्ति ये विभु महेश्वर के छः अंग कहे गये हैं। पांच तन्मात्राएं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध), मन और आत्मा- ये सात सूक्ष्म तत्त्व कहे गये हैं। जो हेतुरूपा प्रकृति है, वह प्रधान है और उससे होने वाले बन्धन को ही विनियोग कहा जाता है। प्रकृति में लीन रहने वाली जो शक्ति है, उसे वेदों में ब्रह्मयोनि और कारणरूप कहा गया है। अद्वितीय, परमेष्ठि, परात्पर, सत्यरूप महेश्वर उसके पुरुष है। वे ही अद्वितीय देव ब्रह्मा, योगी, परमात्मा, महीयान्, व्योमव्यापी, वेदों द्वारा ज्ञात होने योग्य, पुराण, पुरुष अद्वितीय रुद्र, मृत्यु, अव्यक्त, एक बीज और विश्वरूप हैं।

- उन्हें ही कोई एक और कोई अनेक कहते हैं। दूसरे कुछ लोग उन्हें ही अद्वितीय आत्मा कहते हैं। वेदज्ञ लोग उन्हें अणु से अणुतर और महान् से भी महत्तर महादेव कहते हैं। हृदयरूप गुहा में स्थित, परात्पर, पुराणपुरुष, विश्वरूप, हिरण्मय और बुद्धिमानों की परमगति प्रभु को जो इस प्रकार जानता है, वह बुद्धिमान् पुरुष बुद्धि को पार कर जाता है अर्थात् परमपद प्राप्त करता है।

।। नवां-अध्याय ।।

{महादेव के विश्वरूपत्व का वर्णन तथा ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान का प्रतिपादन}

ऋषियों ने पूछा- महादेव ! आप परमेश्वर निष्कल, निर्मल, नित्य तथा निष्क्रिय होने पर भी विश्वरूप कैसे हैं, इसे हम लोगों को बतलायें।

ईश्वर बोले- द्विजो ! मैं विश्व नहीं हूं और मुझसे अतिरिक्त विश्व नहीं है। यह सब माया के निमित्त से है और वह माया भी आत्मा को आश्रित कर रहती है। आदि और अन्त से रहित शक्तिरूप माया अव्यक्त परमात्मा के आश्रित है, उसी माया के कारण अव्यक्त यह प्रपञ्चरूप संसार उत्पन्न हुआ है। मुझ अव्यक्त को कारण कहा जाता है। मैं ही आनन्दस्वरूप, प्रकाशरूप, अक्षर परम ब्रह्म हूं। मुझसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसी कारण ब्रह्मवादियों ने मेरा विश्वरूपत्व निश्चित किया है। एक रूप तथा भिन्नरूप के विषय में इस उदाहरण का वर्णन किया है। द्विजो ! मैं कारण रहित, सनातन, परम ब्रह्म परमात्मा हूं, अतः मुझमें कोई दोष नहीं है। तात्पर्य यह है कि जगत् में विषमता, क्रूरता आदि दोषों का असाधारण कारण मनुष्यकृत कर्म है, ईश्वर नहीं। ईश्वर तो सामान्य कारण है, अतः वह दोषरहित है।

- अव्यक्त में ही माया आदि अनन्त ध्रुव शक्तियां प्रतिष्ठित हैं और वह अव्यक्त अकेले ही विशुद्ध शब्दतन्मात्रारूप आकाशतत्त्व में स्थित रहते हुए सदा प्रकाशित रहता है। स्वभावतः वह अभिन्न (अव्यक्त) तत्त्व जिनके द्वारा अनेक रूपों में प्रतिभासित होता है, उनकी मूल एक परम शक्ति से आदि और अन्तरहित मेरा ध्रुव सायुज्य प्राप्त होता है। पुरुष की दूसरी शक्ति से भूति (ऐश्वर्य) की उत्पत्ति तथा अन्य शक्ति से उसका (भूतिका) लोप होता है। आदि एवं मध्यरहित सर्वत्र विद्यमान पुरुष ही अविद्या से

(स्वेच्छया) युक्त होता है। प्रभामण्डल से मण्डित वह परम व्यक्त, अक्षर, परम ज्योतिरूप है और वह विष्णु का परमपद है। उसमें ही यह सारा जगत् ओतप्रोत है। वही सम्पूर्ण जगत् है। उसे जान लेने से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

- मनके साथ वाणी जिसे न पाकर लौट आती है, उस आनन्दस्वरूप ब्रह्मा को जानने वाला कहीं भयभीत नहीं होता। मैं इस तमोगुण से परे आदित्य के समान वर्ण वाले अर्थात् प्रकाश-युक्त महान् पुरुष को जानता हूं, इसे जानकर विद्वान मुक्त हो जाता है और नित्य आनन्दस्वरूप तथा ब्रह्ममय हो जाता है। जिससे परे और भिन्न कुछ भी नहीं है और जो द्युलोक में स्थित सभी ज्योतियों का एकमात्र प्रकाशक है, उसी को आत्मा मानने वाला विद्वान् नित्य आनन्दस्वरूप ब्रह्ममय हो जाता है। ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण उसे अविनाशी, कलिल, गूढदेह, ब्रह्मानन्द, अमृत तथा विश्वधाम कहते हैं। वहां पहुंचने पर फिर लौटना नहीं पड़ता।
- हिरण्मय प्रकाशयुक्त परम आकाशतत्त्व में जो तेज के समान प्रतिभासित होता है, धीरजन (आत्मस्थ) विज्ञान में उस प्रकाशमान निर्मल व्योम (ब्रह्म) एवं धाम (परम प्राप्तव्य) का दर्शन करते हैं। तदनन्तर अपने आत्मा में आत्मा का बार-बार अनुभव करके धीर पुरुष परम तत्त्व का दर्शन करते हैं और उन्हें यह ज्ञान होता है- यही (आत्मतत्त्व) स्वयं प्रकाशमान, परमेष्ठि, महान् ब्रह्मानन्दस्वरूप भगवान् ईशके रूपमें है। सभी प्राणियोंके अन्तरात्मा, सर्वव्यापी एक देव ही सभी प्राणियों में छिपे हुए हैं। जो धीर पुरुष उन एक अद्वितीय का दर्शन करते हैं, उन्हें ही शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं। वे भगवान् सभी ओर मुख, सिर तथा ग्रीवा वाले, सभी प्राणियों के (हृदयरूपी) गुहा में स्थित और सर्वत्र

व्याप्त रहने वाले हैं। उनसे भिन्न कुछ नहीं है। मुनिश्रेष्ठों ! इस प्रकार यह आपको ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान बतलाया। यह विशेषरूप से गोपनीय है और योगियों के लिये भी दुर्लभ है।

।। दसवां-अध्याय ।।

{ईश्वर द्वारा परम तत्त्व तथा परम ज्ञान के स्वरुप का निरुपण और उसकी प्राप्ति के साधन का वर्णन}

ईश्वरने कहा- अलिंग (चिह्नरहित), अद्वितीय, अव्यक्त, लिंग को ब्रह्म कहा गया है। वह स्वयं प्रकाशरूप परम तत्त्व परम व्योम में अवस्थित है। जो निर्गुण, विशुद्ध विज्ञानरूप, अक्षर और अव्यक्त कारण-रूप है, उस परमपद का विद्वान लोग साक्षात्कार करते हैं। जिसे वेद में तल्लिंग अर्थात् हेतुरूप कहा गया है, उस परम ब्रह्म का शान्त-संकल्प वाले, तत्परायण और नित्य उनके भाव से भावित लोग साक्षात्कार करते हैं। मुनिश्रेष्ठों ! अन्य किसी प्रकार मेरा दर्शन नहीं हो सकता। ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं हैं, जिससे उस परम तत्त्व को जाना जा सके। इस परम ज्ञान को केवल विद्वान् ही जानते हैं। इसके अतिरिक्त सभी कुछ अज्ञानस्वरूप है, जिससे यह मायामय जगत् उत्पन्न है। जो निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प तथा अव्यय ज्ञान है, वही मेरा आत्मरूप है- ऐसा विद्वानों का कहना है। जो उसे (उस परम तत्त्वको) अनेक रूपसे देखते हैं, वे भी परम निष्ठा (भक्ति) का आश्रय ग्रहणकर अद्वितीय अविनाशी तत्त्व का ज्ञान प्राप्तकर उसी परम तत्त्व को देखते हैं और जो दूसरे लोग पुनः एक या अनेक रूपों में परम तत्त्वरूप ईश्वर का भक्ति द्वारा साक्षात्कार करते हैं, उन्हें तदात्मक अर्थात् उस ब्रह्म का स्वरूप ही जानना चाहिये।

- वे वस्तुतः नियानन्दस्वरूप, निर्विकल्प तथा सत्यस्वरूप साक्षात् परमेश्वर को अपनी आत्मा में देखते हैं यह वस्तुस्थिति है। अपने अव्यक्त परम आत्मा में अवस्थित शान्त (योगीजन), श्रेष्ठ परम तत्त्व के परमानन्दस्वरूप, सर्वव्यापी तदात्मक तत्त्व की उपासना करते हैं। यही परम मुक्ति है, विद्वान इसे मेरा उत्तम सायुज्य नामक मोक्ष, निर्वाण ब्रह्म के साथ ऐक्य और कैवल्यरूप से जानते हैं। ये परम शिव आदि, मध्य और अन्त से रहित अद्वितीय तत्त्व हैं। ये ही महादेव हैं, ईश्वर हैं, इसलिये इन्हें जानने से मुक्ति मिल जाती है। वहां परम तत्त्व परमेश्वर में न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न नक्षत्र, न अग्नि और न ही विद्युत्। उसी के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है। वह नित्य प्रकाश अचल एवं सद्रूप से प्रकाशित होता है। जो परम बृहत विशुद्ध तत्त्व निर्विकल्प ज्ञानस्वरूप और नित्य उदित हुआ ज्ञान से ही प्रकाशित होता है, उसी में ब्रह्मज्ञानी लोग जिस नित्य अचल तत्त्व का दर्शन करते हैं, वही ईश हैं। सभी वेद पुरुष को नित्य आनन्दरूप, अमृतरूप और विशुद्ध सत्यस्वरूप कहते हैं। वेदार्थ का निश्चय किये हुए लोग 'ओं' इस प्रणव के द्वारा उस नियामक का ध्यान करते हैं। परम आकाश के मध्य में एकमात्र अद्वितीय देव शिव ही प्रकाशित होते हैं, वहां न भूमि है, न जल है, न मन है और न अग्नि ही है। इसी प्रकार प्राण, वायु, आकाश, बुद्धि तथा अन्य कोई चेतन-तत्त्व वहां नहीं है। यह मैंने सभी वेदों में निहित परम रहस्यमय ज्ञानरूपी अमृत का वर्णन किया। किसी निर्जन प्रदेश में निन्तर प्रयत्नपूर्वक साधना करने वाला योगी ही इस ज्ञानको जानता है।

।। ग्यारहवां-अध्याय ।।

{योगकी महिमा, अष्टाङ्ग-योग, यम, नियम आदि योगसाधनाओं का लक्षण, प्राणायाम का विशेष प्रतिपादन, ध्यान के विविध प्रकार, पाशुपत-योग का वर्णन, वाराणसी में प्राणत्याग की महिमा, शिवआराधन की विधि, शिव और विष्णु के अभेदका प्रतिपादन, शिवज्ञान-योग की परम्परा का वर्णन, ईश्वर-गीता की फलश्रुति तथा उपंसहार}

ईश्वरने कहा- इसके अनन्तर उस परम दुर्लभ योग को कहता हूं, जिससे सूर्य के समान ईश्वर-रूप आत्मा का दर्शन होता है अर्थात् सूर्य का जैसे प्रत्यक्ष हो रहा है, वैसे ही ईश्वर का प्रत्यक्ष होता है। योगरूपी अग्नि शीघ्र ही सम्पूर्ण पाप-पञ्जर को भस्म कर देता है और उसके बाद साक्षात् मुक्तिरूप सिद्धि प्रदान करने वाला प्रसन्न निर्मल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से योग प्रवर्तित होता है। योग तथा ज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति पर महेश्वर प्रसन्न होते हैं। जो नित्य एक समय, दो समय या तीनों समय मेरे योग का साधन करते हैं, उन्हें महेश्वर समझना चाहिये। योग दो प्रकार का कहा गया है- पहला अभावयोग और दूसरा सभी योगों में उत्तमोत्तम महायोग कहलाता है। जिसमें सभी आभासों से रहित शून्यमय (निर्विकल्पक) स्वरूप का चिन्तन होता है और जिसके द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है, वह अभाव योग कहा गया है। जिसमें नित्यानन्दस्वरूप निरञ्जन आत्मा का दर्शन होता है और मेरे साथ एकता होती है, वह परमेश्वर-रूप महायोग कहा गया है।

- अन्य जिन योगियों के योगों का ग्रन्थों में विस्तार हुआ है, वे सभी ब्रह्मयोग की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं। जिस योग में मुक्त

पुरुष विश्व को साक्षात् ईश्वर के रूप में देखते हैं, वह सभी योगों में श्रेष्ठ योग माना जाता है। जो सैकड़ों, हजारो अन्य प्रकार के मन को संयमित करने वाले ईश्वरबहिष्कृत (वेदबाह्य) योगी हैं, वे मुझे अद्वितीय का दर्शन नहीं करते। मुनिश्रेष्ठो ! अन्य वृत्तियों का निरोधकर मेरे में एकचित्तता ही योग है और इस योग के जो आठ साधन मैंने आप लोगों को बताये हैं वे ये हैं- प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, समाधि, यम, नियम तथा आसन। अंहिसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह-संक्षेप में इन्हें यम कहा गया है। ये मनुष्यों के चित्त की शुद्धि करने वाले हैं। मन, वाणी तथा कर्म से सभी प्राणियों को सर्वदा किसी भी प्रकार का क्लेश प्रदान न करना- इसे श्रेष्ठ ऋषियोंने अहिंसा कहा गया है। अंहिसा से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है और अहिंसा से बढ़कर कोई सुख नहीं है। वेदविहित हिंसा को अहिंसा ही कहा गया है। सत्य के द्वारा सब कुछ प्राप्त हो जाता है, सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। द्विजातियों के द्वारा यथार्थ कथन के आचार को सत्य कहा गया है। चोरी से अथवा बलपूर्वक दूसरे के द्रव्य का अपहरण करना स्तेय है, उसका स्तेय का आचरण न करना अस्तेय है, यह धर्म का साधन है। मन, वाणी तथा कर्मद्वारा सभी अवस्थाओं में सर्वदा सर्वत्र मैथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

- आपत्तिकाल में भी इच्छापूर्वक द्रव्यों का ग्रहण न करना 'अपरिग्रह' कहा गया है। प्रयत्नपूर्वक उस अपरिग्रह का पालन करना चाहिये। तप, स्वाध्याय, संतोष, शौच तथा ईश्वर का पूजन- संक्षेप में नियम बतलाये गये गये हैं, ये योगसिद्धि प्रदान करने वाले हैं। तपस्वियों ने पराक आदि उपवासों तथा कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतों के द्वारा शरीर के शोषण को उत्तम तप कहा है। विद्वान लोगों ने वेदान्त-शास्त्र, शतरुद्रिय और प्रणव आदि

के जप को पुरुषों के लिये सत्त्व की शुद्धि करने वाला 'स्वाध्याय' कहा है। स्वाध्याय के तीन भेद हैं- वाचिक, उपांशु और मानस। वेदार्थ जानने वालों ने इन तीनों में उत्तरोत्तर का वैशिष्टय कहा है अर्थात् वाचिक स्वाध्याय से मानस स्वाध्याय श्रेष्ठ है। दूसरे सुनने वाले को स्पष्टरूप से शब्द का ज्ञान उत्पन्न कराने वाला स्वाध्याय 'वाचिक' कहलाता है। अर्थात् वह स्वाध्याय वाचिक है जो दूसरों को स्पष्ट सुनायी पड़े। अब उपांशु का लक्षण बतलाया जाता है। ओठों में केवल स्पन्दन होने के कारण दूसरे को शब्द का बोध न कराने वाला स्वाध्याय 'उपांशु' कहा गया है। यह वाचिक जप से हजार गुना श्रेष्ठ हैं अर्थात् जिसमें ओठों में मात्र स्पन्दन हो, शब्दों का उचचारण न हो। स्पन्दन रहित अक्षर व शब्दों के चिन्तन को विद्वान मानसिक जप कहते है अर्थात् शब्दों पर केवल मन केन्द्रित हो बाकी सर्वथा व्यापारशून्य हो। पुरुष को जो यदृच्छापूर्वक मिल जाता है, उसे ही पर्याप्त समझने वाली बुद्धि को ऋषि लोग नित्य सुख लक्षण वाला संतोष कहते हैं।

- द्विजश्रेष्ठो ! बाह्य और आभ्यन्तर-भेद से शौच दो प्रकार का कहा गया है। मिट्टी और जल से होने वाला शौच बाह्य शौच और मन की शुद्धि आभ्यन्तर शौच है। मन, वाणी तथा कर्म द्वारा स्तुति, स्मरण तथा पूजा करते हुए शिव में अचल भक्ति रखना- यह ईश्वर का पूजन है। नियमों के साथ यमों को बतलाया गया है। अब प्राणयाम के विषय में सुनो- अपनी देह से उत्पन्न वायु को प्राण कहते हैं और उस वायु का निरोध करना आयाम है। उत्तम, मध्यम तथा अधम के भेद से यह तीन प्रकार का कहा गया है। वही सगर्भ और अगर्भ-भेद से दो प्रकार का है। द्वादश मात्रा (अर्थात् प्रणव का बारह बार जप करने तक) के काल को मन्द प्राणायाम, चौबीस मात्रा के प्राणनिरोध को मध्यम और छत्तीस मात्रा तक

के काल तक प्राणनिरोध को उत्तम प्राणायाम कहा जाता है। मन्द, मध्यम तथा मुख्य अर्थात् उत्तम नाम के प्राणायामों में क्रम से प्रस्वेद (पसीना) कम्पन तथा उत्थान होता है। इनसे तत्त्व-प्राप्ति में क्रमशः आनन्दातिशय की अनुभूति होती है। विद्वान जपयुक्त प्राणायाम को सगर्भ और जपरहित को अगर्भ कहते हैं। योगियों के प्राणायाम का यही लक्षण कहा गया है। प्राणधारणपूर्वक व्याहृति (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्), प्रणव और शीर्षमंत्र सहित गायत्री का तीन बार जप (सगर्भ) प्राणायाम कहा जाता है। मनको संयत करने वाले योगियों ने सभी शास्त्रों में रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायमका वर्णन किया है।

- वायु के सतत बाहर निकालने को रेचक और उसके रोकने को पूरक तथा बाद की सम अवस्था की जो स्थिति है, उसे कुम्भक कहा गया है। श्रेष्ठ मुनियो ! सज्जनों ने स्वभावतः विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों के निग्रह को प्रत्याहार कहा है। हृदय-कमल, नाभिदेश, मूर्धा तथा पर्वत-शिखर आदि स्थानों में चित्त के बन्धन को धारणा कहा जाता है। किसी देश-स्थान विशेष का अवलम्बनकर उसमें बुद्धिकी जो एकतान वृत्ति बनी रहती है और दूसरी वृत्तियों से कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है, उसे विद्वानों ने ध्यान कहा है। किसी देश या अन्य आलम्बन से रहित चित्त की एकाकारता समाधि है। इसमें ध्येय मात्र का भान होता है। यह योग का उत्तम साधन है। बारह प्राणायाम-पर्यन्त धारणा, बारह धारणा-पर्यन्त ध्यान और बारह ध्यान-पर्यन्त समाधि कही जाती है।
- स्वस्तिकासन, पद्मासन तथा अर्धासन-भेद से आसन तीन प्रकार का कहा गया है। सभी साधनों में यह साधन उत्तम है। विप्रेन्द्रो ! आप दोनों ऊरुओं के ऊपर दोनों पादतलों को रखकर बैठने को उत्तम पद्म नामक आसन कहा गया है। श्रेष्ठ मुनियों ! एक पैर को दूसरे जांघ के ऊपर

रखकर बैठने को अर्धासन कहा जाता है। यह योग का उत्तम साधन है। दोनों पैरों को जानुओं एवं ऊरुओं के भीतर करके बैठने को श्रेष्ठ स्वस्तिक नामक आसन कहा जाता है। विपरित देश (स्थान) और विपरीत काल में योगतत्त्व का दर्शन भी नहीं होता। अग्निके समीप, जल में, सूखे पत्तों के ढेर के मध्य, जन्तुओं से भरे स्थान में, श्मशान में पुराने गोष्ठ में, चौराहे में, कोलाहल और भययुक्त स्थान में, चैत्य के समीप, दीमकों से पूर्ण स्थान, अशुभ स्थान, दुर्जनों से व्याप्त और मच्छर आदि से भरे स्थान तथा देह-सम्बन्धी कष्ट और मन की अस्वस्थता की दशा में योग साधना नहीं करनी चाहिये। अच्छी प्रकार रक्षित, शुभ-स्थान, पर्वत की गुफा, नदी के किनारे, पुण्यदेश, देवमन्दिर, घर, शुभ, रमणीय, जनशून्य, जनतुओं से रहित स्थानों में योगी को सतत अपने को मेरे परायण रखते हुए योग-साधना करनी चाहिये। योगी को चाहिये कि वह शिष्यों सहित श्रेष्ठ योगियों, विनायक, गुरु तथा मुझे प्रणाम करके समाहित-मन होकर योग-साधना करे।

- स्वस्तिक, पद्म अथवा अर्धासन बांधकर नासिका के अग्रभाग में कुछ-कुछ खुली हुई आंखो से दृष्टि को स्थिर करके निर्भय तथा शान्त होकर मायामय संसार के चिन्तन का परित्याग कर अपने आत्मा में स्थित परमेश्वर देव का चिन्तन करना चाहिये। शिखा के अग्रभाग में बारह अंगुल के प्रदेश में धर्मस्वरूप कन्द से प्रादुर्भूत, ज्ञानरूप नालवाले, ऐश्वर्यरूप आठ दलों वाले, वैराग्यरूपी कर्णिका से युक्त अत्यन्त श्वेत एवं सुन्दर कमल की कल्पना करें और उस कमल की कर्णिका में हिरण्मय श्रेष्ठ कोश का ध्यान करें। उस कोश में विशुद्ध अविनाशी साक्षात् परम ज्योति का ध्यान करें, जिसे सर्व-शक्तिसम्पन्न, दिव्य, अव्यय, ओंकार से वाच्य, अव्यक्त और प्रकाश की किरण मालाओं से व्याप्त कहा गया है।

उस ज्योति में अपने आत्मा की अभेदभावना कर आकाश के मध्य में स्थित परम कारणस्वरूप परमेश्वर का ध्यान करे और परमेश्वररूप एवं सर्वव्यापी होकर किसी भी अन्य वस्तु का चिन्तन न करे। यह अत्यन्त गुह्य स्थान है। अब दूसरा ध्यान कहा जाता है। अपने हृदयदेश में पूर्व में कहे गये उत्तम कमल का चिन्तन कर उस कमल में अग्नि के समान तेजस्वी, कर्तारूप, पंचीसवे तत्त्व पुरुषात्मक परमात्मरूप आत्मा का चिन्तन करना चाहिये। उस परमात्मा के भीतर परम आकाश है क्योंकि परमेश्वर विभु विराट् हैं। ओंकार से बोधित सनातन तत्त्व अच्युत शिव कहलाता है। उसके भीतर अव्यक्त, प्रकृति में लीन, उत्तम परम ज्योति, परम तत्त्व, आत्माधार, निरञ्जन, नित्य, एकरूप महेश्वर का तन्मय होकर ध्यान करना चाहिये। अथवा प्रणव के द्वारा पुनः सभी तत्त्वों का शोधनकर विशुद्ध परमपदरुप मुझमें अपनी आत्मा को स्थापित करे और उसी ज्ञानरुपी जल से अपनी देह को आप्लावित करके मुझमें चित्त आसक्त करे तथा मेरे परायण होकर अग्निहोत्र का भस्म ग्रहण करे और अग्नि.. इत्यादि मंत्र के द्वारा भस्म से अपने सम्पूर्ण शरीर को उपलिप्त कर अपनी आत्मा में परम ज्योतिस्वरूप ईशान का चिन्तन करे।

- जीव को बन्धनरूप पाश से मुक्त करने के लिये यह पाशुपत नामक योग कहा गया है। यह सम्पूर्ण वेदान्तका सार है और श्रुतिमें इस योग की अवस्था को सभी आश्रमों की अवस्था से अतीत अवस्था (उत्कृष्ट अवस्था) बतलाया गया है। इसे अत्यन्त गुह्य और द्विजातियों, भक्तों एवं ब्रह्मचारियों के लिये मेरा सायुज्य प्रदान करने वाला कहा गया है। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, क्षमा, शौच, तप, दम, संतोष, सत्य तथा आस्तिकता- ये सभी इस पाशुपत व्रत के विशेष अंग है। इनमें से एक अंग के भी न होने से इस योग का व्रत लुप्त हो जाता है। इसलिये इन आत्मगुणों से

युक्त साधक ही मेरा पाशुपत व्रत धारण कर सकता है। राग, भय और क्रोध से रहित, मत्परायण और मेरे आश्रित अनेक लोग इस पाशुपत योग के द्वारा मेरा भाव प्राप्तकर पवित्र हो गये हैं। जो जिस प्रकार मेरे पास आते हैं, मैं भी उसी प्रकार उन्हें स्वीकार करता हूं। इसलिये ज्ञानयोग के द्वारा मुझ परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये। अथवा भक्तियोग, परम वैराग्य एवं ज्ञानयुक्त चित्त के द्वारा पवित्रतापूर्वक सदा मेरा पूजन करना चाहिये। सभी कर्मों का परित्याग कर, भिक्षा का अन्न ग्रहण करते हुए अन्य कुछ भी संग्रह न करते हुए (साधना करने वाला) साधक मेरा सायुज्य (मोक्ष) प्राप्त करता है। यह मैने गुह्य बात बतलायी है।

- जो सभी प्राणियों से द्वेष न करने वाला, मित्रता करने वाला, करुणायुक्त, ममतारहित और अंहकार से रहित है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है। जो संतुष्ट रहने वाला, निरन्तर योग साधना करने वाला, संयमित चित्त, दृढ़निश्चयी और मुझमें मन तथा बुद्धि अर्पण करने वाला है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है। जिससे किसी भी प्राणी को उद्वेग प्राप्त नहीं होता और किसी भी प्राणी से जो उद्विग्र नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष और भय से होने वाले उद्वेगों से रहित है, वह मुझे प्रिय है। जो किसी भी प्रकार की अपेक्षा न रखने वाला, पवित्र, कुशल (वेदशास्त्र-निषिद्ध के त्याग में सावधान) पक्षपात से (शत्रु-मित्र भाव से) रहित, दुःख से आक्रान्त होने पर भी व्यथा का अनुभव न करने वाला और सभी प्रकार के आरम्भों का परित्याग करने वाला है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरा प्रिय है। जो निन्दा एवं स्तुति को समान समझने वाला, मननशील, जिस किसी भी पदार्थ से संतुष्ट रहने वाला, गृह से (गृहासक्ति से) रहित है, वह स्थिर बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझे प्राप्त करता है। मुझमें परायण रहने वाला

सभी कर्मों को सदा करते हुए भी मेरी कृपा से शाश्वत परमपद प्राप्त करता है।

- चित्त से सभी कर्मों को मुझमें अर्पित कर मत्परायण होते हुए आशा एवं ममता की आसक्ति से रहित होकर एकमात्र मेरी ही शरण ग्रहण करनी चाहिये। कर्म फल की आसक्ति का सर्वथा परित्याग नित्य संतृप्त और अन्य आश्रय रहित (एकमात्र परमेश्वर को ही आश्रय समझने वाला) व्यक्ति कर्मों में प्रवत्त होते हुए भी उन कर्मों के द्वारा बन्धन में नहीं पड़ता। आशारहित, संयमित चित्तवाला, सब प्रकार के परिग्रहों (संचयों) का परित्याग कर केवल शरीर रक्षा के निमित्त कर्म करते हुए भी व्यक्ति उस पद (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है।
- अनायास जो उपलब्ध हो उसी में संतुष्ट रहने वाले और सभी प्रकार के सुख-दुःखादि द्वन्दों से रहित रहने वाले पुरुष के द्वारा केवल मेरी प्रसन्नता के लिये किये गये कर्म संसार रूपी बन्धन का विनाश करने वाले हैं। मुझमें मन लगाने वाला, मुझे नमस्कार करने वाला, मेरा पूजन करने वाला और मुझे ही अपना परम आश्रय समझने वाला योगी मुझ योग के ईश परमेश्वर को जानकर मुझे प्राप्त कर लेता है। मुझमें बुद्धि रखने वाले साधक सतत परस्पर मेरा बोध कराते हुए और नित्य मेरा वर्णन करते हुए मेरा सायुज्य प्राप्त करते हैं। इस प्रकार नित्य योगयुक्त पुरुष के माया (अज्ञान) से उत्पन्न तथा उनसे भी उत्पन्न कर्मरुप समस्त अन्धकार का प्रकाशमान ज्ञानरूपी दीपक के द्वारा मैं नाश कर देता हूं। मुझमें बुद्धि लगाने वाले जो मनुष्य सतत मेरी पूजा करते हैं, उन नित्य योगयुक्त पुरुषों के योगक्षेम का मैं निर्वाह करता हूं और जो दूसरे लोग अभिलषित विषयों के उपभोग के लिये ही भिन्न-भिन्न देवताओं का पूजन करते हैं, उनका अन्त विषयभोग तक ही समझना चाहिये, क्योंकि देवता

के अनुसार ही फल भी होता है। जो दूसरे देवों के भक्त हैं, वे यदि मेरी भावना से युक्त होकर दूसरे देवताओं की पूजा करते हैं अर्थात् दूसरे देवों में मेरी ही भावना करते हैं तो वे भी मुझमें भावना करने के कारण मुक्त हो जाते हैं। अतएव समस्त अनीश्वर देवताओं का परित्याग कर जो मुझ ईश का ही आश्रय ग्रहण करता है, वह परमपद को प्राप्त करता है।

- पुत्र (स्त्री, गृह) आदि में आसक्ति का परित्याग कर और शोकरहित होकर तथा अपरिग्रही होकर विरक्त पुरुष को मृत्युपर्यन्त शिवमें परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये। जो सम्पूर्ण भोगों का परित्याग कर सर्वदा शिव (लिंग) का पूजन करते हैं, उन्हें मैं एक जन्म में ही परम-ऐश्वर-पद (मोक्ष) प्रदान करता हूं। परम आनन्दस्वरूप, अद्वितीय, सद्रूप, निरञ्जन, ज्ञानात्मक और सर्वत्र व्याप्त शिव योगियों के हृदय-प्रदेश में अवस्थित रहता हैं। नियम-पूर्वक भक्ति करने वाले दूसरे लोग विधिपूर्वक जहां-कहीं भी शिवलिंग की भावना करते हुए उस महेश्वर-लिंग की अर्चना करते हैं। जल में, अग्नि के मध्य में, आकाश में, सूर्य में, रत्न आदि में अथवा अन्यत्र कहीं भी ईशकी भावना करके लिंगरूप ईश्वर की आराधना करनी चाहिये। यह सब कुछ लिंगमय है और सब कुछ लिंगमें प्रतिष्ठित है, अतएव जहां-कहीं भी लिंगरूप में शाश्वत ईशका अर्चन करना चाहिये।
- क्रियाशीलों का (लिंग) अग्नि में, मनीषियों का जल, आकाश और सूर्य में, अज्ञानियों का काष्ठ आदिमें और योगियों का लिंग हृदय मे स्थित रहता है। यदि (ब्रह्म) विज्ञान उत्पन्न न हुआ हो तो विरक्त होकर द्विजको अत्यन्त प्रीति से ब्रह्मके प्रणवरूपी शरीर का यावज्जीवन जप करते हुए रहना चाहिये। अथवा एकाकी एवं संयत-चित्तवाले द्विजको मरणपर्यन्त शतरुद्रिय का जप करना चाहिये, इससे उसे परमपद प्राप्त होता है।

अथवा विप्रको चाहिये कि मरणपर्यन्त समाहितचित्त होकर वाराणसी में निवास करे। वह भी ईश्वर (शंकर) के अनुग्रह से उत्कृष्ट परमपद को प्राप्त करता है। वाराणसी में सभी प्राणियों को उनके प्राण निकलते समय भगवान् शंकर उस परम ज्ञान को प्रदान करते हैं, जिससे वे पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। सम्पूर्ण वर्णाश्रम-विधि का पालन करते हुए मेरे परायण रहने वाला अपने उसी जन्म में (जिस जन्म में वर्णाश्रम-धर्म का पालन कर रहा है) ज्ञान प्राप्त कर शिवपद को प्राप्त करता है। द्विजो ! नीच अथवा पाप योनिवाले भी जो प्राणी वाराणसी में निवास करते हैं, वे सभी ईश्वर (शंकर) के अनुग्रह से संसार को पार कर लेते हैं, किंतु जो पापाक्रान्त चित्तवाले हैं, उन्हें बहुत विघ्न होते हैं। इसलिये द्विजो ! मुक्ति प्राप्त करने के लिये निरन्तर धर्म का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। यह वेदों का रहस्य है, इसे जिस किसी को नहीं देना चाहिये। धार्मिक तथा ब्रह्मचारी भक्त को ही प्रदान करना चाहिये।

व्यासजी बोले- इस प्रकार उत्तम आत्मयोग का वर्णन करके भगवान् शंकर ने वहीं बैठे हुए प्रसन्नचित्त नारायण से कहा- मैंने ब्रह्मवादियों के कल्याणार्थ इस ज्ञान को कहा है। आप इस कल्याणकारी ज्ञान को शान्तचित्त शिष्यों को प्रदान करें। अजन्मा भगवान् शंकर ने ऐसा कहने के उपरान्त श्रेष्ठ योगियों से कहा- द्विजोत्तमो ! सभी द्विजाति भक्तों के कल्याण के लिये आप लोग भी मेरे कहने से सभी भक्त शिष्यों को मेरे ज्ञान का विधिपूर्वक उपदेश करें। जो ये नारायण हैं, वह मैं ईश्वर ही हूं। इसमें संदेह नहीं हैं। जो हम दोनों में कोई भेद नहीं देखता, उसी को यह परम ज्ञान देना चाहिये। नारायण नामवाली तथा शान्त अक्षर-संज्ञक मेरी यह परम मूर्ति सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है। लोक में जो भेददृष्टिवाले लोग इसके विपरीत समझते हैं, वे मेरा दर्शन नहीं करते हैं और बार-बार संसार में जन्म लेते हैं। जो इन अव्यक्त विष्णु अथवा मुझ

देव महेश्वर को एकीभाव से देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये अनादिनिधन (आदि और अन्त से रहित) आत्मारूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और वैसे ही पूजा भी करो।

- जो लोग विष्णु को दूसरा देवता मानकर मुझे दूसरा देवता समझकर देखते हैं, वे घोर नरकों में जाते हैं, मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूं। मूर्ख हो, पण्डित हो, ब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल हो, मेरे आश्रित रहने वाले प्रत्येक को मैं मुक्त कर देता हूं, किंतु जो नारायण की निन्दा करने वाला है, उसे मैं मुक्त नहीं करता। इसलिये मेरे भक्त मुझमें प्रीति उत्पन्न करने के लिये इन महायोगी पुरुषोत्तम की अर्चना अवश्य करें और इन्हें नमस्कार अवश्य करें। ऐसा कहकर पिनाक धारण करने वाले भगवान् शंकर वासुदेव का आलिंगन करके उन सभी के देखते-देखते अन्तर्हित हो गये। भगवान् नारायण ने भी अपने पारमार्थिक विग्रह का त्यागकर उत्तम तपस्वी का वेष धारण किया और सभी योगियों से कहा- आप लोगों ने परमेष्ठि महेश्वर की कृपा से संसार बन्धन को नष्ट करने वाला उन्हीं साक्षात् महेश का निर्मल ज्ञान प्राप्त किया है। इसलिये मुनीश्वरो ! विगतज्वर होकर आप सभी जायें और धार्मिक शिष्यों में परमेष्ठि के ज्ञान को प्रवर्तित करें। इस ईश्वर-सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान को विशेष रूपसे शान्त भक्त, धार्मिक तथा अग्निहोत्री ब्राह्मण को देना चाहिये। ऐसा कहकर योगियों में परम श्रेष्ठ वे महायोगी विश्वात्मा नारायण स्वयं अन्तर्हित हो गये।
- वे मुनिगण भी देवों के आदिदेवेश्वर महेश्वर को और भूतादि (समस्त प्रपञ्च के मूल कारण) नारायण को नमस्कार कर अपने स्थानों की ओर चले गये। महामुनि भगवान् सनत्कुमार ने संवर्त को ईश्वरीय ज्ञान

(शिवाज्ञान) का उपदेश प्रदान किया। उन्होंने भी वह ज्ञान सत्यव्रत को दिया। योगीन्द्र सनन्दन ने महर्षि पुलह को और प्रजापति पुलह ने गौतम को ईश्वरीय ज्ञान प्रदान किया। अङ्गिरा ने वेदों ज्ञाता भरद्वाज को और कपिल ने जैगीषव्य तथा पञ्चशिख को वह ज्ञान दिया। सभी तत्त्वों के द्रष्टा मेरे पिता पराशर ने भी वह परम ज्ञान सनक से प्राप्त किया और उनसे वाल्मीकि ने प्राप्त किया। प्राचनी काल में अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर के अंश से उत्पन्न महायोगी वामदेवजी ने मुझसे कहा, जो साक्षात् पिनाकधारी रुद्रस्वरूप हैं। देवकी के पुत्र हरि नारायण ने भी स्वयं साक्षात् अर्जुन को यह उत्तम ज्ञान प्रदान किया। जब मैंने वामदेव रुद्र से इस श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त किया, तभी से मेरी गिरीश में विशेष भक्ति हो गयी। मैंने शरणागतों के रक्षक, शरण (प्राणिमात्र के आश्रय), भूतों के ईश, गिरिश, स्थाणु, देवाधिदेव त्रिशूली रुद्र की विशेष रूप से शरण ग्रहण की है। पत्नी तथा पुत्रों के साथ आप सब लोग भी उन गोवृषवाहन, कल्याणकारी भगवान् शम्भु की शरण में जायें। उनकी कृपा से कर्म योग के द्वारा व्यवहार करें और विभूतिभूषण गोपति (इन्द्रियों के पति) महादेव शंकर की पूजा करें। ऐसा कहे जाने पर उन शौनक आदि महर्षियों ने पुनः शाश्वत स्थाणु सनातन महेश्वर एवं सत्यवती के पुत्र व्यास को प्रणाम किया और प्रसन्नमन होकर वे सभी लोकों के महेश्वर, साक्षात् हृषीकेश, प्रभु कृष्णद्वैपायन व्यास से कहने लगे- भगवन् ! आपकी ही कृपा से शरणागतों की रक्षा करने वाले गोवृषध्वज महादेव की वह अविचल भक्ति हमें प्राप्त हो गयी है, जो देवताओं को भी दुर्लभ है। मुनिश्रेष्ठ ! आप श्रेष्ठ कर्मयोग हमें बतलायें, जिसके द्वारा मोक्षार्थी लोग इन भगवान् ईशकी आराधना करते हैं। आप वेदव्यास की संनिधि में ही श्रीसूतजी

भगवान् महेश्वर के वचनों को सुन लें, जो वचन समस्त लोकों के रक्षक हैं और जिनमें समस्त धर्मों का संग्रह हुआ है। अतः इनका वर्णन करें। इसके अतिरिक्त आप वह भी बतायें, जो पूर्वकाल में अमृतमन्थन के समय इन्द्र के द्वारा तथा मुनियों के द्वारा पूछे जाने पर कूर्मरूपी देवाधिदेव श्रीविष्णु ने कहा था आप उसी कर्मयोग का वर्णन करें। इस प्रकार मुनियों ने कहा उसे सुनकर सत्यवती के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यासजी ने समाहित होकर मुनियों को सनातन कर्मयोग बतलाया।

श्रीसनत्कुमार आदि प्रमुख मुनियों एवं भगवान् शंकर के मध्य सम्पन्न इस संवाद को जो नित्य पढता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। अथवा जो ब्रह्मचर्यपरायण विशुद्ध द्विजों को इस संवाद को सुनाता है, या जो इस संवाद के अर्थ का अनुसंधान करता है, वह परमगति को प्राप्त करता है। जो दृढ़व्रती भक्ति-सम्पन्न होकर इस संवाद को नित्य सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होते हुए ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। इसलिये विद्वानों को सभी प्रयत्नों के द्वारा नित्य इसका पठन, श्रवण एवं विशेष रूपसे ब्राह्मणों को इसका सदा मनन करना चाहिये।

Books Written by Gurudev Shri Raj Verma ji

- Divya Mantra Sadhana Evam Siddhi

- Shri Baglamukhi Divya Sadhana

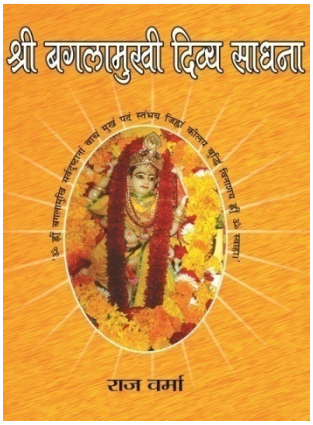

Shri Raj Verma ji
Contact- 09897507933, 07500292413